विप्लव पुस्तक माला—८

ज्ञानदान

यशपाल

दूसरा संस्करण

प्रकाशक
विप्लव कार्यालय, लखनऊ.

मार्च १९४४]

[मूल्य १।=)

समर्पण

पृथ्वी की आर्द्रता वाष्प बन

आकाश में जाती है।

मेघ के रूप में बरसकर वह

पृथ्वी को तृप्ति देती है।

उसी प्रकार—

तुमसे प्राप्त प्रेरणा के मेघ से बरसी।

यह कल्पनायें—

तुम्हीं को अर्पित हैं:—

य—

क्यों ?

एक माप निश्चित कर हम सब वस्तुओं को नाप लेते हैं। यह नाप ही हमारी धारणा में वस्तुओं के अस्तित्व और स्थिति का आधार है। परन्तु यह माप है क्या ? उसका अपना अस्तित्व क्या है ! एक गज़ या एक सेर हमारे अनुमान और धारणा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। उनका परिमाण और आयतन जितना है, उससे कम या अधिक भी हो सकता था। माप के रूप में, गज़ या सेर वस्तुओं की स्थिति उसी प्रकार निश्चित करते, जैसे वे अब करते हैं। अन्य सब वस्तुओं के अस्तित्व की एक धारणा निश्चय करने के लिये उपयोगी होकर भी माप (गज़, सेर, फुट या पाउण्ड) का अपना कोई स्वतः निश्चित अस्तित्व नहीं।

यही बात हमारे ज्ञान के सम्बन्ध में है। संसार भर के उचित-अनुचित को निश्चय करनेवाला माप है हमारा ज्ञान! परन्तु हमारा यह ज्ञान स्वयम् कितनी अनिश्चित वस्तु है ! और उस अनिश्चित ज्ञान के साधन से निश्चित किया गया मनुष्य और उसके समाज के उचित और अनुचित का यह विराट आयोजन भी कितना अनिश्चित है ! मनुष्य समाज ने अपने जीवन काल में एक तत्व को पहचाना है

कि निश्चित और स्थिर कुछ भी नहीं। ज्ञान भी अनिश्चित और परिवर्तन-शील है। उसकी कोई सीमा नहीं। आगे बढ़ते चले जाने में ही ज्ञान की सार्थकता और हेतु है। आगे बढ़ ज्ञान के परिवर्तित होने, विश्वास और धारणा द्वारा जीवन के क्षेत्र को व्यापक बनाने में ही ज्ञान की सफलता है। परन्तु मनुष्य और उसके समाज के ज्ञान से उत्पन्न उसका विश्वास और धारणा ही उसके ज्ञान पर सीमायें और बन्धन लगा देता है।

ज्ञान का स्रोत है,—जिज्ञासा यानि—'क्यों?' अपने मौजूदा विश्वास और धारणा के मोह में मनुष्य ज्ञान के आगे बढ़ने से भयभीत होने लगता है। वह 'क्यों' को ही अनुचित ठहराने लगता है। अपने जीवन के स्रोत-ज्ञान की धारा का अवरोध करने के लिये मनुष्य उस पर विश्वास और धारणा के वज़नी पत्थर रख देता है। जीवन के स्रोत और आधार का अवरोध आत्महत्या नहीं तो क्या है! आत्महत्या द्वारा मनुष्य जीवित रहने का प्रयत्न करना चाहता है। धारणा को न बदलने के लिये वह अपनी जान देने और दूसरों की जान लेने की वीरता का अभिमान करता है। जानने और परिवर्तन के प्रयत्न को वह पाप और अनाचार बता, जीवन की प्रगति और सम्भावना का मार्ग बन्द कर देना चाहता है।

'क्यों?' की यह कुंजी जो जीवन की मंज़िल पर लगे बन्द द्वारों को खोलकर जीवन के लिये व्यापक क्षेत्र प्रस्तुत करती है, उसे अप्रिय, भयानक और घृणित जान पड़ने लगती है। परन्तु—हे मनुष्य! यदि तुझे जीवित रहना है तो जीवन की व्यापकता का मार्ग बन्द करनेवाले

विश्वास और धारणा के तालों को 'क्यों' की कुंजी से खोलता चला जा...... । इसी में तेरा कल्याण है—तेरे मनुष्यत्व की सार्थकता है ।

× × ×

पाठकों के सहयोग से ही इन कठिन परिस्थितियों में भी यह अपनी आठवीं पुस्तक प्रकाशित करना मेरे लिये सम्भव हो सका । उनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ ।

× × ×

जीवन के दूसरे क्षेत्रों की ही भाँति साहित्य के क्षेत्र में भी डा० प्रकाश पाल का पूर्ण सहयोग मेरा सबसे बड़ा सहायक है । उन्हें धन्यवाद !

× × ×

इस संग्रह की अनेक कहानियाँ हंस, माया, विप्लव, रानी, नोक-झोंक, नई—कहानियाँ आदि में छप चुकी हैं और कुछ 'आल-इण्डिया-रेडियो' द्वारा प्रसारित हो चुकी हैं । इन कहानियों में परिवर्तन करने के बाद इन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित कर सकने के लिये मैं उन सबका कृतज्ञ हूँ ।

विप्लव
मार्च १९४४

यशपाल

ज्ञानदान

महर्षि दीर्घलोम प्रकृति से ही विरक्त थे। गृहस्थ-आश्रम में वे केवल थोड़े ही समय के लिये रह पाये। उस समय ऋषि-पत्नी ने एक कन्यारत्न प्रसव किया था। भ्रम और मोह के बन्धनों को ज्ञान की अग्नि में भस्म कर, वैराग्य साधना द्वारा मुक्ति पाने के लिये महर्षि नर्मदा तीर पर आश्रम में आ बसे। पुत्री को साथ ले ऋषिपत्नी भी उन्हीं के समीप एक पर्णकुटी में आ रहीं। वे भक्ति से ऋषिपति की सेवा कर, उनके ज्ञान के प्रकाश में, जीवन के दुरूह दुःख-मायामय भँवर से मुक्ति पाने की आशा करने लगीं।

गृहस्थ के मायाबन्धन के कीचड़ में आत्मा को सानकर फिर तपश्चर्या द्वारा मुक्ति की साधना करने की अपेक्षा महर्षि ने कन्या को आरम्भ से ही तप और त्याग द्वारा मुक्ति के मार्ग की दीक्षा दी। वन्यलता-द्रुमों और तपोवन के पशु-पक्षियों के संग में पली ब्रह्मचारिणी सिद्धि को शारीरिक और मानसिक वासना से कोई परिचय न था। आश्रम के नियमों के अनुसार आत्मा मुख्य और शरीर गौण था। ब्रह्मचारिणी सिद्धि, अपने शारीरिक विकास से उन्मुख हो, आत्मा को पहचानने में ही तत्पर रहतीं।

ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सिद्धि छब्बीस वर्ष की आयु को प्राप्त हुईं। उनके शिर के लम्बे केशों ने अलंकार और प्रसाधन के साधनों का स्पर्श कभी न किया। उपेक्षा से पीठ पर फेंके हुए उनके दीर्घ केशों की शोभा थी केवल नर्मदा नदी के जल में स्नान करते समय उनमें उलझ गये अबरक के कण और काई। मस्तक पर, प्रातः स्नान के चिह्न-स्वरूप, नदी-पुलिन के त्रिपुण्ड् की खौर रेखा विद्यमान रहती। शरीर का बोझ बनते हुए कठिन उरोज केले की छाल में पीठ पीछे बँधे रहते। कमर से नीचे का भाग मृगचर्म से ढँका रहता। ऋषि उपदेश के अनुसार शारीरिक आवश्यकताओं को आत्मा का शत्रु समझ वह उनका दमन करती थीं। प्राणायाम समाधि द्वारा मन और इच्छाओं को रोकना उनके लिए सुख था। सुख की अनुभूति की इच्छा को पाप समझ एक चिरन्तन सुख की कल्पना वह सदा करतीं। वह सुख था, सुख की इच्छा का न होना। वह ब्रह्मचारिणी थीं; उनका जीवन था संयम !

महर्षि का आश्रम नर्मदा तट पर पर्वतों की गुफाओं से घिरी भूमि में था। गंगा, यमुना, गोदावरी और हिमालय तक के तपोवनों में महर्षि दीर्घलोम के अनासक्ति-योग का चर्चा था। उनके यहाँ कर्मकाण्ड का महत्व था केवल वैराग्य साधना के लिए। उनका उपदेश था—कर्मों और संस्कारों के बंधनों में फँसी मनुष्य की आत्मा माया के आकर्षण से निर्बल होकर जीवन और मृत्यु के बन्धनों में दुख पाती है। दुख से मुक्ति और शाश्वत आनन्द की प्राप्ति का मार्ग है—कर्म और संस्कार के बंधनों से आत्मा को मुक्त करना। मनुष्य जीवन का उद्देश्य है—आनन्द की प्राप्ति। आनन्द का अर्थ है—मुक्ति !

महर्षि दीर्घलोम अनासक्ति के परम ध्येय में विश्वास करते

थे। उनका उपदेश था—संग से मोह उत्पन्न होता है, मोह से काम, काम से क्रोध और क्रोध से बुद्धि विभ्रम हो जाता है। बुद्धि विभ्रम ही सर्वनाश है। महर्षि परम ज्ञानी और वेदोद्गाता थे। अमरत्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु ब्रह्मचारियों का दल उनके चारों ओर बना रहता। दूर-दूर से राजा और ऋषि अनासक्तियोग का उपदेश लेने वहाँ आते। चातुर्मास आने पर अनेक परिव्राजक संन्यासी भी आश्रम में आ टिकते।

चातुर्मास आरम्भ होने पर आश्रम में निवास करने के लिए आनेवाले परिव्राजक तपस्वियों में ब्रह्मचारी नीड़क भी आये। ब्रह्मचारी नीड़क को यौवन से पूर्व ही ज्ञान लाभ हो गया था। सांसारिक मोहजाल में न फँस उन्होंने ब्रह्मचर्य से ही वैराग्य का मार्ग ग्रहण कर लिया। आयु अधिक न होने पर भी उनका ज्ञान और योग परिपक्व था। विषयों की निस्सारता के तत्व को ज्ञान-चक्षु द्वारा पहचानकर उन्होंने परम सत्य ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त कर लिया था। अनासक्ति और समाधि द्वारा मृत्युलोक और ब्रह्मलोक में उनका समान अधिकार था। वे एक ही समाधि में तीन और चार दिन तक बैठे रहते। एक समय समाधि अवस्था में एक गौरैया ने उनकी जटा में नीड़ (घोंसला) बनाने का यत्न किया था। तब से उनका नाम 'नीड़क' पड़ गया और उनकी समाधि की शक्ति की महिमा दसों दिशाओं में फैल गई।

महर्षि दीर्घलोम ने ब्रह्मचारी नीड़क की अभ्यर्थना की और उनसे प्रार्थना की कि अपने अलौकिक ज्ञान की शक्ति द्वारा उन लोगों का अज्ञान दूर करें जो ज्ञानयोग के नाम पर तर्क का आश्रय ले अपनी वासना को बुद्धि की लम्पटता द्वारा तृप्त करने की चेष्टा करते हैं।

× × ×

यज्ञ-कुण्ड में सुलगते हुए घृत, सुगन्धित समिधाओं और मूलों के पुनीत धूम से आश्रम का वातावरण सुवासित हो रहा था। बनैली मालती और पाटल के फूलों की सुगन्ध लहरें बन वनप्रान्त से आ उस सुगन्ध को अधिक रुचिर बना रही थीं। आश्रम के विशाल वट वृक्ष के नीचे ऋषिवृन्द ब्रह्मचारी नीड़क का प्रवचन सुनने के लिए एकत्र हुए थे। कुछ वृद्ध तपस्विनियाँ और ऋषिपुत्री सिद्धि बाँई ओर बैठी थीं।

ऋषियों की अभ्यर्थना में फैले हुए चारु की बलि का भोजन पा आश्रम निवासी मृग तृप्ति से किल्लोलें कर रहे थे। वृक्षों की टहनियों पर बैठे पक्षी अपने पंखों को चोंच से सहलाकर कलरव कर रहे थे। ज्ञान-धनी ऋषि लोग, इन सब सांसारिकताओं से विरक्त हो, ब्रह्मचारी नीड़क द्वारा चिरन्तन, अविनाशी सुख की प्राप्ति पर प्रवचन सुन रहे थे।

ब्रह्मचारी नीड़क का मुख-मण्डल जटाजूट और श्मश्रु (दाढ़ी-मूंछ) से ढँका था। उनके मस्तक पर नर्मदा के पुलिन का खौग त्रिपुण्ड् शोभायमान था। उनके नेत्रों से सजीव उग्रता की ज्योति निकल रही थी। उनमें साहस और आत्म-विश्वास था। उनके लोमपूर्ण विशाल वक्षस्थल से क्षीण कटि पर मूंज का यज्ञोपवीत लटक रहा था। तपस्या से क्षीण उनके उदर पर त्रिब-लि पड़ रही थीं। कटि से नीचे उनके शरीर का भाग मूंज के एक वस्त्र से ढँका था। पद्मासन की मुद्रा में बैठ वे चार घड़ी तक प्रवचन करते रहे। उन्होंने कहा—"तर्क बुद्धि की शक्ति है। बुद्धि संस्कारों से आवेष्ठित है। हमारी इच्छा और वासना हमारे तर्क का मार्ग निश्चित करती हैं। इसलिए तर्क प्रायः प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वासना के मार्ग का प्रतिपादन करने लगता है।"

उन्होंने कहा—"ब्रह्मज्ञान अनुभूति द्वारा ही प्राप्त होता है।

अनुभूति प्रधान है। तर्क भी अनुभूति पर आश्रित है। सृष्टि की कारणभूत शक्ति, प्रत्यक्ष प्रकृति और मनुष्य की अनुभूति यह सब एक हैं। जिस प्रकार वायु के स्पर्श से जल की सतह पर उठनेवाले बुलबुले का अस्तित्व सारहीन है, वह क्षणभंगुर है, वह वास्तव में महान् जल-राशि का अंश मात्र है ; उसी प्रकार मनुष्य का जीवन संस्कारों के वायु के स्पर्श से ब्रह्म के अपार सागर में उठ जानेवाला बुलबुला मात्र है। जीवन का यह बुलबुला अमर नहीं हो सकता। अमर शाश्वत ब्रह्म ही है। संस्कारों का आधार मनुष्य की कल्पना है। यह कल्पना संस्कार रूप वायु से जीवन का बुलबुला खड़ा कर देती है। यह बुलबुला ही अहम् का भाव है—दुःख का कारण है।

आत्मा ब्रह्म का अंश है। शरीर ब्रह्म की क्रीड़ा प्रकृति का अंश है। इनके संयोग का अस्तित्व कुछ नहीं। हमारे दुःख और सुख की अनुभूति का कुछ सार नहीं। संस्कारों की वायु से विक्षिप्त बुलबुले का जल में मिल जाना ही आत्मा का ब्रह्म में मिल जाना है। यही चिर सुख है, मुक्ति है, परम-पद है। क्षणिक सुख जब नष्ट होते हैं तब दुःख की अनुभूति पैदा होती है। वास्तविक सुख क्षणिक सुख को छोड़, चिर सुख-जीवन मुक्ति की साधना में ही है। चिर सुख इच्छाओं को जीतने में है, जिसका मार्ग है समाधि। समाधि शरीर के व्यवधान को पारकर आत्मा से परमात्मा का संयोग कराने का साधन है। शरीर आत्मा का कारागार है। शरीर की सेवा करना इस कारागार को दृढ़ बनाना है। ज्ञानी व्यक्ति को शरीर की पुकार की चिन्ता न करनी चाहिये। शरीर की चिन्ताओं से मुक्ति पाना परम मुक्ति का मार्ग है।......”

अपने शब्दों का प्रभाव देखने के लिए ब्रह्मचारी नीड़क की

की। शरीर का कठोर दमन, उसकी पुकार की उपेक्षा ही तपस्या है। उस विषय का एक अत्यन्त सजीव उदाहरण ब्रह्मचारिणी सिद्धि के रूप में उनके सम्मुख था। परन्तु युवती के ध्यान को वे मन में आने देना उचित न समझते थे।

तट के जल की ओर उनकी दृष्टि थी। स्वच्छ जल में किल्लोल करती मछलियों की ओर देखते हुए और वासना का दमन किये हुए वे दुख से मुक्ति पाने का उपाय सोचने लगे। परन्तु विचारों के क्रम में ब्रह्मचारिणी सिद्धि का समाधिस्थ रूप दिखाई पड़ जाता; सीधे मेरुदण्ड के आधार पर मस्तक, नासिका, चिबुक, उरोजों की सन्धि और त्रिबलियों में छिपी नाभि सब एक सीधी रेखा में...और मृगचर्म से आवृत्त शरीर के अधोभाग के सम्मुख, संयतभाव से एक दूसरे पर रखी हुई पिण्डलियाँ और एक दूसरे पर रखी हुई हथेलियाँ।

इससे पूर्व भी नारी को उन्होंने देखा था; पलितअंग तपस्विनियों और वस्त्रों से शरीर को लपेटकर राजमार्गपर चलती हु पाप और मोह में लिप्त आत्मा नगर की स्त्रियों को। उनकी ओर दृष्टिपात करने की इच्छा भी ब्रह्मचारी नीड़क के मन में न हुई थी। परन्तु ब्रह्मचारिणी सिद्धि का समाधिस्थ रूप अनेक बेर उनकी कल्पना की दृष्टि में सम्मुख आ खड़ा होता। उन्हें याद हो आया, ब्रह्मचारिणी अपने नेत्र मूँदे हुए थीं। परन्तु अनेक श्रोतृवृन्द-ब्रह्मचारी, ऋषि और तपस्विनियाँ एकटक उनकी ओर देख रही थीं—"सिद्धि नेत्र क्यों मूँदे थी?"—उनके मन में प्रश्न उठता।

प्रवचन को ध्यान-पूर्वक सुनने के लिए—स्वयं उन्होंने अपने प्रश्न का उत्तर दिया। उसी क्षण विचार आया—सम्भवतः इसलिए कि वह उन्हें देखना नहीं चाहती। परन्तु वे उन्हें

देखना क्यों नहीं चाहती थी ?...सिद्धि को उनसे क्या भय हो सकता था ? स्वयं ही उन्होंने उत्तर दिया—समाधि के लिए वे भी तो नेत्र मूँद लेते हैं; उन्हें किस वस्तु से भय है ? उत्तर मिला—संसार के दुःखों से मुक्ति पाने के लिए वे नेत्र मूंदकर संसार से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं।

समाधिस्थ हो जाने के लिए वे शिला-खण्ड पर पद्मासन से बैठ गये। नेत्र मूँद लेने से पूर्व जल में किल्लोल करती हुई मछलियों की ओर देख ध्यान आया; और यह मछलियाँ ?

नर्मदा तट की उत्तुङ्ग शिलाओं में गूँजता हुआ एक आकाश बेधी तीव्र चीत्कार सुन ब्रह्मचारी ने आँख उठा उधर देखा। नदी पार, धूप में चमकती हुई संगमरमर की शुभ्र चट्टान के कंगूरे पर एक चील अपने परों को फैलाये, छाती को चट्टान पर चिपका, ऊपर उड़ते हुए पक्षी की ओर कातर भाव से चोंच उठा चीख रही है। उसके ऊपर पर फड़फड़ाता हुआ पक्षी, व्याकुलता भरी उड़ाने ले-ले हृदय से उठे आवेग से आकाश को गुंजा रहा है। एक अदृश्य बन्धन दोनों पक्षियों को परस्पर आकर्षित कर रहा था। इस दृश्य से ब्रह्मचारी नीरूक की रोम-राशि सिहर उठी। ध्यान कर उन्होंने सोचा, मन की कौन वृत्ति उन्हें विक्षिप्त कर रही है ? उन्होंने निश्चय किया, मनोवेग को वश में करने के लिए उन्हें ध्यानमग्न हो जाना चाहिए। परन्तु विचार उठा, क्यों ?...सुख की प्राप्ति के लिए ?...यह चील और यह मछलियाँ समाधिस्थ क्यों नहीं होते ?...जन्म-मरण के बन्धन से, दुःख से इन्हें भय क्यों नहीं लगता ? इनके शरीर में स्थित आत्मा को मुक्ति की इच्छा क्यों नहीं होती ?

उनके विचार ने उत्तर दिया—भ्रम और अज्ञान के कारण यह जीव दुःख को दुःख समझ नहीं पाते ! इस तर्क ने उनके विचार

में खलबली मचा दी। प्रश्न उठा—दुःख को दुःख न समझना भ्रम और अज्ञान है या दुःख से सदा भयभीत हो, उससे बचते रहने की चिन्ता करना ज्ञान है ? और फिर प्रश्न उठा—इन जीवों के अज्ञान और भ्रम का कारण क्या है ? क्या यह वासना के दास हैं ? यदि वे वासना के दास हैं तो उनकी यह वासना उतनी ही स्वभाविक और प्राकृतिक है जितना कि उनका शरीर, उनका अस्तित्व ! और इन जीवों का शरीर और अस्तित्व क्या उनकी अपनी इच्छा या वासना पर निर्भर है ? नहीं, वह तो ब्रह्म की माया या इच्छा है। ब्रह्म की माया और इच्छा के विरुद्ध वे कैसे जा सकते हैं और...'और क्या मनुष्य ही ज्ञानमय ब्रह्म की इच्छा के विरुद्ध जा सकता है ? क्या मनुष्य की प्रवृत्ति उसकी इच्छा और वासना भी प्रकृति और ब्रह्म का विधान नहीं ? और क्या उनकी तपस्या और ज्ञान उपार्जन का प्रयत्न और वासना को दमन करने की चेष्टा ब्रह्मशक्ति के विधान और कार्य-क्रम के विरुद्ध नहीं......?

ब्रह्मचारी नीड़क समाधिस्थ न हो सके। वे सोचते चले गये—भय और पीड़ा इन पशु-पक्षियों के जीवन में भी आती है परन्तु उस दुःख और पीड़ा की आशंका और चिन्तन को ही जीवन का लक्ष्य बनाकर, मुक्ति की चिन्ता वे नहीं करते रहते। वे सुख को सुख और दुःख को दुःख, जैसे वे जीवन में सम्मुख आते हैं, ग्रहण कर जीवन की यात्रा पूर्ण कर देते हैं। जीवन की यात्रा समाप्त हो जाने पर, उस मंज़िल पर इन जीवों और मनुष्य की आत्मा में क्या कुछ अन्तर रह जायगा......?

सम्मुख शिला-खण्ड पर परों की फड़फड़ाहट और चीत्कार सुनकर ब्रह्मचारी की दृष्टि उस ओर गई। चील का जोड़ा जीवन और जन्म की शृङ्खला के व्यापार को जारी रखने के प्रयत्न में

लगा हुआ था। एक अद्भुत रोमांच की सिहरन से ब्रह्मचारी के शरीर में एक उद्वेग बल खाकर रह गया; प्रहार के सम्मुख लक्ष्य के हट जाने से जैसे व्यर्थता की व्याकुल अनुभूति होती है।

उन्हें स्मरण हुआ कि वे समाधिस्थ होने जा रहे थे परन्तु समाधि के लिए वह दृढ़ता और उत्साह शेष न रहा। उसका स्थान ले लिया था तर्क और शंका ने। समाधि के प्रति विरक्ति के भाव ने उठकर कहा—सहज सुख से उपराम होकर तप, त्याग और समाधि द्वारा भी सुख की ही तो खोज की जाती है......। यह क्या प्रवंचना है। वितृष्णा की एक मुस्कान से उनके होठों पर खड़े श्मश्रु के केश तनिक थिरक कर रह गये। उनकी ग्रीवा पराजय के से भाव में एक ओर झुक गई। एक साँस खींचकर उन्होंने कहा—"जीवन के क्रम का विरोध...जीवित रह कर...?

विचारों की भूल-भूलैया में भूल कर ब्रह्मचारी नीड़क को क्षुधा और समय का कुछ ध्यान न रहा। सूर्य आकाश के मध्य से पश्चिम की ओर ढलता चला जा रहा था। ब्रह्मचारी नीड़क के मानव मस्तिष्क के अतिरिक्त विशाल प्रकृति का शेष व्यापार गति के प्रवाह में स्वाभाविक रूप से बहता चला जा रहा था।

नदी के जल में सहसा विलोडन का शब्द सुन उन्होंने गर्दन को बाँईं ओर घुमाकर देखा। एक स्थान पर जल की लहरें वृत्ताकार फैलती हुई कुछ दूर जाकर जल में विलीन हो रही थीं। समीप ही तट पर मृगचर्म और कमण्डल रखे हुए थे। 'कौन ?' और 'कैसे' यह प्रश्न मस्तिष्क में उठने से पहले ही फैलती हुई लहरों के वृत्त के मध्य से, फैले हुए भीगे कृष्ण केशों से ढँका सिर जल के ऊपर उठा। दो हाथों ने उन फैले हुए केशों के बीच से चेहरे को बाहर किया। जल की वृत्ताकार लहरें नये सिरे से एक बार और फैलने लगीं। नीड़क ने देखा, वह

आकृति ब्रह्मचारिणी सिद्धि की थी । ब्रह्मचारिणी ने श्मश्रु-हीन मुख की कोमलता से ब्रह्मचारी के शरीर में बिजली-सी कौंद गई। कन्धों तक जल में खड़ी ब्रह्मचारिणी, डुबकी ले अपने शरीर का प्रक्षालन कर रही थीं । उनके अङ्गों के हिलने से नर्मदा का जल क्षुब्ध हो रहा था और उस दृश्य से, उसी मात्रा में, ब्रह्मचारी के शरीर का रक्त ।

ग्रीवा एक ओर झुकाये ब्रह्मचारी नीड़क उस ओर देखते रहे । स्नान कर ब्रह्मचारिणी सिद्धि तट की ओर चलीं । तट की ओर उठते हुए प्रत्येक पद से उनका शरीर क्रमशः जल के बाहर होता जा रहा था । ब्रह्मचारी नीड़क की दृष्टि निरंतर उसी ओर थी । विचारों के क्षोभ से उनके श्वास की गति तीव्र हो उठी । हृदय से उठकर कण्ठ में आ गये उद्वेग को वे निगल जाने का प्रयत्न कर रहे थे ।

अपने यौवन के धन की शत्रु, मनुष्य की दृष्टि से सुरक्षित उस स्थान में, जल के आवरण से निकल ब्रह्मचारिणी अपने शरीर को दूसरे आवरणों में सुरक्षित करने लगीं । उन्होंने कटि पर मृगचर्म को मूँज की मेखला से बाँधा और उन्नत वर्तुल उरोजों को कदली वल्कल के वर्तुल में छिपा, मूँज की रस्सी से पीठ के पीछे बाँध दिया । मानो तप साधना के शत्रुओं को परास्त कर बन्दी बना दिया ।

नदी जल से कमण्डल भर सिद्धि ने पश्चिम क्षितिज पर, अनेक रंग के मेघों से घिरे सूर्यदेव का तर्पण किया और आश्रम की ओर चलीं । उसी समय पुकार सुनी—'ब्रह्मचारिणी !'

चौंककर सिद्धि ने अपने बाईं ओर देखा । लम्बे कदम भरते हुए ब्रह्मचारी नीड़क उसकी ओर आ रहे थे । ब्रह्मचारिणी ने

नत शिर होकर प्रणाम किया और उसी समय यह स्मरण कर उनका शरीर झन्ना उठा—उसने इस स्थान को मनुष्य की दृष्टि से निरापद समझा था...! जैसे हरी घास में छिपे साँप पर पैर पड़ जाने से शरीर झन्ना उठता है...शायद उससे भी भयंकर...!

ब्रह्मचारिणी सिर झुकाये आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही थीं। नीड़क की तीव्र दृष्टि ब्रह्मचारिणी की संकुचित, मूक, संयत मुद्रा की ओर थी। मुख से शब्द निकल न पाते थे। तरल स्वर में उन्होंने पूछा—"ब्रह्मचारिणी जीवन का उद्देश्य क्या है?"

उत्तर मिला—"जीवन के बन्धन से मुक्ति!"

ब्रह्मचारिणी के मुख पर दृष्टि केन्द्रित कर उन्होंने पूछा—"जीवन का प्रयोजन क्या स्वयं उसका अपना नाश करना ही है? और जीवन है क्या ब्रह्मचारिणी?"

ब्रह्मचारिणी सिद्धि ने दृष्टि झुकाये उत्तर दिया—'आत्मदर्शी ऋषियों के वचन के अनुसार जीवन दुःख का बन्धन है?"

ब्रह्मचारिणी के नत नेत्रों की ओर देख ब्रह्मचारी नीड़क ने फिर प्रश्न किया—"जीवन है, दुःख का बंधन और जीवन का उद्देश्य है, इस बंधन से मुक्ति प्राप्त करना। ब्रह्मचारिणी! जो कहा जाता है और सुना जाता है उसे एक ओर छोड़ अनुभूति की बात कहो। जीवन को उत्पन्न करने वाली सृष्टि की संचालक ब्रह्म-शक्ति जीवन को समाप्त कर उससे मुक्ति पाने के लिये ही जीवन की सृष्टि करती है, यह बात तर्कसंगत और बुद्धिसंगत नहीं।"

कुछ क्षण मूक रह ब्रह्मचारिणी ने उत्तर दिया—"महर्षि के प्रवचन में यह प्रसंग कभी नहीं आया। ज्ञाननिधि, आप इस प्रश्न का समाधान कीजिये।"

ब्रह्मचारी ने फिर प्रश्न किया—"जीवन का सबसे भयंकर

दुःख कौन है ब्रह्मचारिणी ?" ब्रह्मचारिणी ने संक्षिप्त उत्तर दिया "मृत्यु !"

हल्की मुस्कराहट से ब्रह्मचारी के श्मश्रु थिरक उठे परन्तु ब्रह्मचारिणी की दृष्टि नर्मदा के पुलिन पर थी। नीड़क बोले— "मृत्यु ? ब्रह्मचारिणी मृत्यु एक भ्रम है। वह व्यक्तिगत आतंक है। मृत्यु जीवन को समाप्त नहीं कर देती! जीवन की शृंखला में वह जीवन की एक कड़ी की सीमा है। जीवन की एक कड़ी के बाद दूसरी फिर तीसरी वंशानुक्रम से चलती हैं। जीवन के वंशानुक्रम को रखना ही सृष्टि का सबसे प्रधान कार्य है। शंका उत्पन्न करके उसका समाधान करना, दुख की कल्पना कर उससे निर्वाण का उपाय ढूंढ़ना, क्या यही जीवन का उद्देश्य है ? ब्रह्मचारिणी, जीवन की प्रवृत्ति और गति ने क्या कभी तुम्हें स्वाभाविक मार्ग की ओर नहीं पुकारा ?"

कुछ क्षण मूक रहकर ब्रह्मचारिणी ने उत्तर दिया—"ज्ञाननिधि, मेरा तप अपूर्ण है। मेरी आत्मा को अभी ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो पाया ?"

"आँख मूंदकर जिस ब्रह्म की खोज की जाती है ब्रह्मचारिणी उसके विषय में प्रश्न नहीं कर रहा हूँ"—ब्रह्मचारी ने कहा— "प्रत्यक्ष अनुभव में जो जीवन आता है, उसी की बात कह रहा हूँ।"

प्रश्न का भाव ठीक से न समझ नेत्र झुकाये हुए ही ब्रह्मचारिणी ने निवेदन किया—"ऋषिवर का तत्व मैं ग्रहण नहीं कर पायी ?...जीवन क्या है ?...तपोधन उपदेश कीजिये !"

दीर्घ निश्वास ले ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया—"नर्मदा का बहता जा रहा प्रवाह उसका जीवन है। यदि प्रवाह की गति का अवरोध कर इसे उद्गम की ओर प्रवाहित करने की चेष्टा की

जाय तो ?...यदि यह नदी प्रवाह को दुःख समझकर गति-निरोध द्वारा प्रवाह से मुक्ति प्राप्त करना चाहे...?"

ब्रह्मचारिणी सिद्धि ने अंजलिबद्ध करों से विनय की—"ऐसा अगम ज्ञान केवल तपोपुंज भविष्य-द्रष्टा ऋषि लोगों को ही प्राप्त हो सकता है। ज्ञानधन, मेरा आत्मा ज्ञानहीन और निर्बल है।"

"जीवन की इच्छा को ही तुम निर्बलता समझती हो शायद, ब्रह्मचारिणी! उसे वासना का नाम दे, अपनी सम्पूर्ण शक्ति से जीवन का हनन करने का यत्न कर दुःख को सुख और सुख को दुःख मानने का यत्नकर तुम भूल जाना चाहती हो, जीवन क्या है?"

रक्त के वेग से ब्रह्मचारी के शरीर में अनुभव होनेवाली उत्तेजना का ज्ञान, सम्पर्क के अभाव में, ब्रह्मचारिणी के लिए सम्भव न था। परंतु प्रातः प्रवचन के समय के स्थिर गम्भीर स्वर ब्रह्मचारी के और इस समय के स्वर के तरल-कम्पन में ब्रह्मचारिणी अन्तर अनुभव कर रही थीं। कारण समझे बिना ही एक मधुर मूढ़ता ब्रह्मचारिणी के मस्तिष्क में प्रवेश करती जा रही थी। बद्ध-अंजलि हो उन्होंने विनय की—"ज्ञानधन, ज्ञानदान दीजिये!"

"ज्ञान?"—एक दीर्घ निश्वास ले ब्रह्मचारी नीड़क ने नदी पार संगमरमर के उत्तुङ्ग के शुभ्र शिला-खण्डों की ओर दृष्टि उठाई। चील की जोड़ी अपने जीवन की शक्ति को अपने शरीर में सीमित न रख सककर उसके लिए नवीन शरीर की रचना में व्यस्त थी। चरम सीमा पर पहुँचा हुआ उनके जीवन का उच्छ्वास तीव्र चीत्कार के रूप में नर्मदा तट की उत्तुङ्ग शिलाओं से टकरा-कर जल पर गूंज रहा था। उस ओर संकेत कर ब्रह्मचारी ने कहा—"उस ओर देखो ब्रह्मचारिणी!"

ब्रह्मचारिणी ने दृष्टि उठाकर देखा। विषयान्ध शरीरों का ऐसा व्यापार उन्होंने पहले भी देखा था। ऐसे अवसर पर उस

ओर से दृष्टि हटा प्राणायाम द्वारा मन और इन्द्रियों का निरोध कर, मन को विकार के आक्रमण से बचाने का प्रयत्न उसने किया था। परंतु पूर्ण युवा ब्रह्मचारी की उपस्थिति में, उसके संकेत से उस दृश्य को देखकर उनका शरीर कंटकित हो उठा। उनके नेत्र झुक गये, मुख आरक्त हो गया।

ब्रह्मचारी नीड़क के श्वास का वेग तीव्रतर हो रहा था। उनके स्नायु वीणा के तने हुए तारों की भाँति झनझना रहे थे। ब्रह्मचारिणी का शरीर उन्हें तीव्र वेग से आकर्षित कर रहा था। मूकभाव से नेत्र झुककर उसका मुख आरक्त हो जाना ब्रह्मचारी को असह्य हो रहा था।

एक पग समीप आ, कम्पित स्वर में उन्होंने पूछा—"ब्रह्मचारिणी, क्या वह पाप और अनाचार हैं? तो क्या जीवन भी पाप और अनाचार नहीं?"

नेत्र मूंदकर कम्पित स्वर में ब्रह्मचारिणी ने उत्तर दिया—"तपोधन ऋषिओं के वचन के अनुसार यह अज्ञान के कारण, वासना के पंक में फँसकर मुक्ति के मार्ग से च्युत होना है। आत्मा को दुख के बन्धन में फँसा देना है।......जीवन भ्रम और माया है।"

"यह दुख का बन्धन है ब्रह्मचारिणी?"—ब्रह्मचारिणी की ओर एक पग बढ़कर नीड़क ने प्रश्न किया—"तुम्हारा विश्वास है, चील की यह जोड़ी इस समय जन्म-मृत्यु के माया-बंधन को सम्मुख देख कातर हो चिल्ला रही है?...या जीवन के उच्छ्वास की पूर्ति के आवेग में यह आत्म-विस्मृत हो रहे हैं?"

"क्या यह जीवन माया और भ्रम है ब्रह्मचारिणी?"—उन्होंने पूछा—"जिस सत्य की अनुभूति हम रोम-रोम से अनुभव कर रहे हैं, संसार में व्यापक ब्रह्म की वह शक्ति माया और भ्रम है?

अपनी कल्पना में हम जिस विश्वास को सृष्टि कर पाते हैं, जिस विश्वास के लिए इन्द्रियों से प्राप्त होनेवाले ज्ञान की उपेक्षा कर हम अतृप्ति के कारण उत्पन्न दुख को सुख समझने की चेष्टा करते हैं, वह सत्य है ? ब्रह्मचारिणी, क्या तुम सत्य को मिथ्या और मिथ्या को सत्य मानने का यत्न नहीं कर रहीं ?"

ब्रह्मचारी ने अपनी तर्जनी से संकेत कर पूछा—"ब्रह्मचारिणी क्या तुम हृदय में जीवन की शक्ति को कामना के रूप में अनुभव नहीं कर रहीं ? क्या तुम हृदय में द्वन्द्व अनुभव नहीं कर रहीं ?"

ब्रह्मचारिणी ने अपने झुके हुए त्रस्त विशाल नेत्रों को क्षण भर के लिए ऊपर उठा उत्तर दिया—"अन्तर-द्रष्टा ज्ञानी, आप का वचन सत्य है। मैं निर्बल आत्मा हूँ। इन्द्रियों का दमन मैं अभी तक नहीं कर पाई हूँ !"

ब्रह्मचारी ने अपना हाथ सिद्धि के कन्धे पर रख दिया। उन्होंने अनुभव किया, ब्रह्मचारिणी का शरीर लड़खड़ा गया। अपनी बाँह से उनकी पीठ को सहारा दे, दूसरे हाथ से उनका चिबुक ऊपर उठा ब्रह्मचारी ने कहा—"सुन्दरी, यह द्वन्द्व जीवन की माँग...ब्रह्म की शक्ति है।"

ब्रह्मचारिणी के पैर इस प्रकार काँप उठे मानो वह गिर पड़ेंगी। कुछ हतप्रतिभ होकर ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया— "सुन्दरी मेरे कठोर शरीर के स्पर्श से तुम्हें असुख का अनुभव होता है ?"

"नहीं···"—काँपते हुए स्वर में सिद्धि ने उत्तर देने का यत्न किया—"एक अपरिचित अनुभूति . ...कुछ असह्य सी......कुछ अप्राप्य-सी...अत्यन्त प्रिय...आह......?"

सिद्धि के मुख से शब्द न निकल सके परन्तु उनका जटा-वेष्ठित शिर ब्रह्मचारी के लोमपूर्ण वक्षस्थल पर टिक गया और

नर्मदा के पुलिन से भरे सिद्धि के जटाजूट पर नीड़क के ओष्ठ आ टिके।

सहसा चौंककर सिद्धि अपने पैरों पर खड़ी हो गई। "ज्ञानधन!"—उन्होंने कहा—"अज्ञान का अन्धकार मुझे घेरे ले रहा है...ज्ञानदान दीजिये!"

कुछ हतोत्साह होकर ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया—"ज्ञान?... ज्ञान चेतना का विकास है।......चेतना का द्वार इन्द्रियाँ हैं... प्रकृति उन्हें मार्ग दिखाती है ब्रह्मचारिणी, प्रकृति का हनन और दमन अज्ञान है।"

निर्बलता अनुभव कर ब्रह्मचारिणी ने आश्रय की खोज में अपने दोनों बाहु शरीर के बोझ सहित ब्रह्मचारी के कन्धे पर रख दिये।

कम्पित चरणों से नर्मदा के पुलिन पर दोहरे चरण-चिह्न अङ्कित करते हुए वे दोनों नीरव नदी-तट की एकान्त शिलाओं की ओर चले जा रहे थे।

चाँद और तारे अपनी शीतल किरणों की उँगलियों से श्रावण के घने मेघों का पट खोल पृथ्वी पर होनेवाले सृष्टिक्रम के व्यापार को देख संतोष प्रकट कर रहे थे। ब्रह्म की शक्ति सृष्टि की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए प्राकृतिक शक्तियों का आयोजन कर रही थी।

× × ×

ब्रह्म-मुहूर्त से पूर्व ही श्रावण के घने मेघों से अविराम वृष्टि हो रही थी। परन्तु यम-नियम का पालन करनेवाले ऋषि लोग प्रातः कर्म से निवृत्त हो, आश्रम के विशाल बरगद के नीचे ज्ञान-चर्चा के लिए एकत्र थे। यज्ञ का पवित्र धूम, दिशा बदलती हुई वायु के प्रहारों के कारण महावृक्ष को चारों ओर से घेरकर स्थिर-सा हो रहा था।

पिछले दिन मध्याह्न से ब्रह्मचारी नीड़क की अनुपस्थिति और चौथे पहर नदी स्नान करने जा ब्रह्मचारिणी सिद्धि के न लौटने की चिन्ता सभी आश्रम-निवासियों को विक्षिप्त किये थी। प्रसंग में महर्षि दीर्घलोम ने कहा—

"......वासना मनुष्य की सबसे बड़ी शत्रु है। वासना की अग्नि में मनुष्य का ज्ञान सूखी समिधाओं की भाँति भस्म हो जाता है......।"

उसी समय नर्मदा-तट की एक गुफ़ा में नीड़क ने निद्रा समाप्त होने की अँगड़ाई ली। उनका शरीर हिलने से सिद्धि सचेत हो गईं। नीड़क के पलक खुलने से पूर्व ही उपेक्षित मृगचर्म को शरीर पर खेंचते हुए उन्होंने गुफ़ा द्वार से बाहर दृष्टि डाल कर कहा—ब्राह्म-मुहूर्त व्यतीत हुए बिलम्ब हो गया जान पड़ता है ?"

"हाँ !"—नीड़क ने उत्तर दिया—"शायद समाधि का समय बीत गया......अनेक वर्ष पर्यन्त समाधि द्वारा परम सुख से तल्लीन होने और आत्म विस्मृत में संसार को भूल जाने की चेष्टा करके भी क्या कभी तुम इतनी आत्म-विस्मृत हो सकी थीं जितनी इस सम्पूर्ण रात्रि में ?"—सिद्धि की ग्रीवा को अपनी बाहों में ले उनके अधमुँदे नेत्रों में नेत्र गड़ा नीड़क ने मुस्कराते हुए पूछा।

आत्म-तृप्ति में पुनः आत्म विस्मृत हो, नीड़क की ग्रीवा का आलिंगन कर सिद्धि ने उन्मीलित नेत्रों से उत्तर दिया—

"आर्य सत्य कहते हैं।"

एक राज़ २

मेरी बहुत पुरानी साध पूरी हुई जब मुझे देहरादून की बदली का आर्डर मिला। देहरादून के प्रशान्त उपवन के प्रति मेरे मन में बहुत पुरानी अनुरक्ति है। पहाड़ियों से घिरी उस उपत्यका में जा माँ की गोद में आँख मूँद कर सो जाने का-सा सुख मिलता है। वृक्षाच्छादित, सूनी और स्वच्छ सड़कें, परेड का विस्तृत मैदान और चारों ओर हरियाली छाई पहाड़ियों की उमड़ती लहरें। यह सब चित्र के समान सुन्दर जान पड़ता है। रात में मंसूरी की पहाड़ी पर छिटकी बिजली की रोशनी...... मानो सूर्य की रानी वहाँ दिन में क्रीड़ारत हो अपना सतलड़ा हार भूल गई है; वही रात में पड़ा चमक रहा है। वातावरण की वह आर्द्र शीतलता कैसी प्राणपोषक जान पड़ती है। संसार की व्यग्रता, उथल-पुथल तथा भयंकर संघर्ष से परे 'देहरा' किसी साधनारत वानप्रस्थी के आश्रम के समान जान पड़ता है। जाने कब से मन में निश्चय कर लिया है, मेरी कब्र, अगर बनी तो, देहरे के दामन में ही बनेगी। हृदय के गुप्त-प्रेम की तरह देहरा मेरे मन में सदा के लिये एक मीठी याद लेकर बस रहा है।

सबसे बड़ी बात तो यह कि मिस्टर प्रसाद के अतिरिक्त देहरे में मेरा न कोई मित्र था न परिचित! इसीसे मेरे जैसे

असामाजिक अहदी के लिये देहरे से बढ़कर और कौन स्थान हो सकता था ? मेरे जीवन की बड़ी भारी महत्वाकांक्षा थी और अब भी है...देहरे के ऊपरी भाग में फुलवाड़ी से घिरा एक छोटा-सा बँगला हो।......बरामदे में शाल ओढ़ आराम कुर्सी पर लेटा रहूँ।......हल्की धूप में फूलों और तितलियों का प्रेमाभिनय देखा करूँ और सूर्यास्त के समय वनराशि के बीच से दावानल के समान अरुण-वरण पश्चिम दिशा को देखते-देखते ......रजनीगंधा, देहरादून की रजनीगंधा......उसी में मैं समा जाऊँ ...।

तुमने कभी देहरे में छावनी की नई सड़क से सूर्यास्त का दृश्य देखा है ?......नहीं ! तो संसार में कुछ भी नहीं देखा। मन चाहता है, एक दफ़े वहाँ बरामदे में बैठ पाऊँ तो फिर उठूँ नहीं। कोई दया कर पास पड़ी तिपाई पर कुछ सिगार लाकर रख दे, इसके बदले स्वर्ग का राज्य उसे मिलने की दुआ दे सकता हूँ। दिन में कोई दो चार दफ़े चाय का प्याला पहुँचा दे, उसे भी बहुत बड़ा आशीर्वाद दूँगा। हाँ ; 'राज़' की बात कह रहा था—

मुझे देहरे में आठ तारीख को हाज़िर होना चाहिये था और फिर बारह से विजय दशमी की छुट्टियाँ थीं। इधर सात तारीख तक मुझे बदली के लिये सात दिन का अवकाश मिला। इतने दिन निष्क्रिय रह, बरामदे में बैठ धुआँ पीने की आशा से मेरा मन आनन्द बिभोर हो उठा। आर्डर मिलते ही मैंने मि० प्रसाद को एक तार, किसी निराले स्थान में एक बँगला हम लोगों के लिये ले लेने के लिये, दे दिया।

तीस को रविवार था। इसलिये विशेष यत्न से तैयारी कर शनिवार की संध्या को ही देहली से चल देना चाहता था।

रानी के किये बिना तो कुछ हो नहीं सकता और मेरी इस उतावली में रानी का सहयोग बिलकुल न था। अव्वल तो वह देहली जैसे सुसभ्य परिचित समाज को छोड़ देहरा जाने की बात से ही प्रसन्न न थी। फिर सप्ताह भर का समय, जो हाथ में था, उसे वह यों न गवाँ देना चाहती थी। उसे किसी सहेली के यहाँ जाना था, किसी को वह आमंत्रित किये हुए थी, किसी को वह भेंट देना चाहती थी, किसी से भेंट मिलने की उसे आशा थी। एक-आध दावत में उसे शामिल होना था और कुछ सामान ख़रीदना भी अनिवार्य था, जिसकी कि देहरे जैसे उजाड़ स्थान में मिलने की आशा न थी।

बिल्ली के भागों छींका टूटा—शुक्रवार दोपहर की डाक में लाहौर से एक भारी लिफ़ाफ़ा आया। मायके के पत्रों पर रानी ऐसे टूटती है जैसे मांस पर चील। पत्र पढ़, चेहरे पर भारी चिन्ता का भाव ला उसने कहा—"तुम्हारा बहुत जल्दी देहरे जाना किसी तरह नहीं हो सकता।"

कुछ न समझ विस्मय से पूछा—"क्यों क्या मतलब ?"

"घर की तो कुछ फिक्र तुम्हें रहती नहीं। बैठकर इस पत्र को सुनो !"—उसने आज्ञा दी और पत्र पढ़ने लगी। पत्र सुनते हुए मैं मन-ही-मन अपना प्रोग्राम तय करने लगा। आधी पंजाबी और आधी हिन्दी मिले इस पत्र को सुन मैं केवल इतना ही समझ सका कि रानी के मायके में उसकी भाभी, बहन या अन्य कोई प्रथम प्रसव की महाभयंकर और मुबारिक परि-स्थिति में है और वहाँ उसका तुरंत पहुँचना बहुत ज़रूरी है। न पहुँचने से जो बदनामी होगी उसका पारावार नहीं और फिर उसका जो परिणाम हो . ...।

देहरे में कुछ दिन बिलकुल अकेले रहने की आशा से मैं

मन ही मन पुलकित हो उठा। इस अपराध को छिपाकर कहा—"बेशक, तुम आज ही चली जाओ! जब तक ज़रूरत हो वहाँ रहो, फिर सीधे देहरादून आ जाना!"

मेरी कमसमझी पर खीझकर रानी ने कहा—"मैं चली जाऊँ?...तुम क्या नहीं चलोगे?...छुट्टी तो है ही, वहाँ क्या करोगे? तुम्हारे खाने-पीने का इंतज़ाम कौन करेगा? और तुम कुछ समझते भी हो? समय पर ही अपना आदमी पहचाना जाता है। वहीं से सीधे देहरे चले चलेंगे। या मैं किसी दूसरे आदमी को तुम्हारी देखभाल के लिये साथ भेज दूँगी।"

मेरा मन बुझ-सा गया। कहा—"यों चाहो तो मुझे घसीट कर जहाँ चाहे ले जाओ! पर मैं डाक्टर नहीं, नर्स नहीं! मेरी उपस्थिति से साली की प्रसव-वेदना में किस प्रकार कमी हो सकेगी, यह मैं नहीं समझ सकता। तुम मिलखी (नौकर) को साथ ले जाओ। मैं वहाँ सब इंतज़ाम कर, न होगा विजय-दशमी में लाहौर आ जाऊँगा। सात-आठ दिन रह भी लूँगा।"

जज की तरह मेरी ओर घूरकर रानी ने विस्मय से पूछा—"तो तुम वहाँ अकेले रहोगे कैसे?"

ब्याह हो जाने से पहले माँ समझती थीं, उनकी नज़रों से ओझल होते ही मेरा जीवन खतरे में पड़ जायगा। ब्याह हो जाने के बाद से यही रानी का भी विचार है। परन्तु मैं अपने आपको इतना अपदार्थ नहीं समझता। साहस कर कहा—"मकान प्रसाद ने ले ही लिया होगा..." झुँझला कर रानी बोली—"मकान क्या करेगा?...खाना कौन पकायेगा?...मेरे बिना सब मिट्टी हो जायगा।"

जवाब दिया—"घबराओ नहीं, जाते ही नौकर रख लूँगा।"

"हाँ, नौकर ऐसे ही मिल जाते होंगे?"—उसने जवाब दिया।

अस्तु, रानी को मना लिया। एक दो ऐसे नुसखे हैं जो रानी पर अव्यर्थ हैं। उनका भेद अभी नहीं खोला जा सकता। मेरा विचार है, यह सब महत्व की बातें, अपने पुत्र को जवान हो जाने पर सिखा दूँगा ताकि बहू उसे बिलकुल निरुपाय न कर दे।

× × ×

सहारनपुर तक हम दोनों पंजाब मेल में एक साथ ही आये और रानी राह भर मुझे समझाती आई। समझाया—"मकान प्रसाद के मकान से दूर मत लेना। केवल ज़रूरत का ही सामान खुलवाना और सब वैसे ही सम्भला रहने देना। हाँ, और कोई नया आदमी नौकर मत रख लेना। प्रसाद के यहाँ से ही किसी आदमी को बुला लेना। और देखो, मेरी कसम, खाना प्रसाद के यहाँ ही खाना! कुछ खयाल या संकोच मत करना। उसकी लड़की के लिये कुछ बनवाकर मैं तुम्हारा सब संकोच धो दूँगी। तकलीफ़ या उदासी हो तो मेरे पास दौड़ आना या तार दे देना। मैं मिनिट भी देर नहीं करूँगी......"

रानी की आँखें भीगती देख मैं डरा, कहीं वह लाहौर जाने का विचार ही न छोड़ दे। सहारनपुर के स्टेशन पर भी मैं उसे साहस बँधाता रहा। आखिर मेल के छूट जाने पर निश्चिन्त हो स्टेशन से बाहर निकला। स्वतंत्र होकर पर फड़फड़ाने से एक अपूर्व आनन्द अनुभव हुआ।

मि० प्रसाद ने जो मकान मेरे लिये लिया था, उसे देख प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। छावनी की नई सड़क पर, पहले पुल के पास, बिलकुल एकान्त में, छोटा-सा बँगला। प्रसाद अपने आदमियों से सामान रखवा रहे थे, उसी समय एक अनजान आदमी ने बरामदे में आ सलाम कर पूछा—"बाबूजी, नौकर रखोगे?"

चतुरता से मैंने पूछा—"तुम नौकरी करोगे ? पहले कभी नौकरी किया है ?" उस आदमी ने सिर हिलाकर हामी भरी।

उस आदमी के उदास चेहरे को देख सोचा, यदि इसे नौकर नहीं रखूंगा तो यह बेचारा कहाँ जायगा ? घर उसका दूर पहाड़, टेहरी राज में था। नाम उसने बताया फतेसिंह और जाति ब्राह्मण। तनख्वाह माँगी आठ रुपये। मुँह माँगी कीमत देना मूर्खता में शामिल है, इसलिये कहा—"नहीं, सात मिलेंगे" हाथ बाँधकर उसने उत्तर दिया—"बाबूजी, काम देख लेना जो ठीक समझो !"

अब इनकार या भाव तोल करने की गुंजायश नहीं रह गई। मैंने कह दिया—"अच्छा !"

उपदेश देते समय रानी ने कहा था—"अनजाना आदमी रखोगे तो वह सब कुछ चुराकर भाग जायगा।" निश्चय से मैंने कहा—और जो हो, यह आदमी चोर नहीं हो सकता, आखिर तो मैं फिलासफ़ी का प्रोफ़ेसर हूँ। बाहर आकर जब मि० प्रसाद को मालूम हुआ कि इसी बीच में मैंने नौकर भी रख लिया, तो विश्वास के स्वर में उन्होंने कहा—"यदि भाभी तुम्हें उल्लू समझती हैं तो अचरज क्या ?" परंतु आदमी तो रख लिया गया था। उसे वचन दे दिया गया था।

× × ×

फतेसिंह की देख रेख में मेरी गृहस्थी चलने लगी। सामान एक दफे ढंग से लग जाने पर कुछ भी कठिन न था। मेरा समय प्रायः बरामदे में कुर्सी पर लेटे-लेटे ही कटता। फतेसिंह सब काम सम्भाले था। पहले तीन चार रोज़ कुछ चख-चख ज़रूर हुई। मैं उसे बात-बात पर डाँटता रहा—यह देखो दरी पर मिट्टी पड़ी है। बराम्दा मैला है। पानी के गिलास में उँगली मत

डालो ! तौलिया वहाँ पर मत पड़ा रहने दो ! कपड़े खूँटी पर लटकाओ ! हफ्ते भर में वह काम लायक हो गया, या मैं उसके लायक हो गया।

विजयदशमी में, जैसा कि मेरा पहले ही विचार था, मैं लाहौर नहीं गया। लिख दिया—मैं सब प्रकार से आराम से हूँ और लाहौर आना कई कारणों से सम्भव नहीं ! बाद में रानी का आना भी एक मास तक न हो सका। मेरे और फतेसिंह के यह दिन बड़ी शान्ति से कट गये।

फतेसिंह में अक्ल की जरा कमी थी, वर्ना वह आदमी था सोने का। बिना बुलाये वह कभी न बोलता और हाथ का निहायत सच्चा। दो-तीन काम उससे अक्सर बिगड़ जाते। सुबह की चाय में अक्सर देर हो जाती। जल्दी के लिये कहना फिजूल था। जल्दी करने पर उसके हाथ से बर्तन ही छूट जाते। दोपहर का खाना भी कुछ उलझन का काम था। चाय अलबत्ता वह दिन में कई दफे तैयार कर सकता था। जूते पर पालिश करवा लेना, टोपी झाड़ना, हाथ धुलाकर तौलिया देना, मेज झाड़ देना, यह छोटे-छोटे काम थे जो उसे प्रायः भूल जाते। उसमें एक ऐब भी था। जहाँ उसे डाँटा, उसकी रही-सही अक़्ल भी काफूर हो जाती। आखिर करता क्या ? अकेला आदमी था, क्या-क्या देखता ?

अपनी भूल से वह स्वयम् ही दुखी हो जाता। उस समय कुछ भी कहना सम्भव न था। वह कहता था—बीबीजी आयेंगी तो मैं सब सीख जाऊँगा। लेकिन "बीबीजी" ने उसे खूब सिखाया।

कभी दिल बहलाने के लिये मैं उसे समीप बैठा बातचीत करने लगता—उसके यहाँ कितनी जमीन है, बाल बच्चे

कितने हैं, कुछ कर्ज़ा है या नहीं ? यह बातें कितनी ही दफे दुहरा-दुहराकर उससे पूछीं। इस बातचीत से एक आत्मीयता का बोध उसे होता था। कुछ दिन में हम लोग आत्मीयों की भाँति समीपी हो उठे। मुझे भी उसके व्यवहार में एक सहानु-भूति और समवेदना अनुभव होती थी। मुझे चुपचाप पड़े देख वह कुछ सोचने लगता। मुझे सन्तुष्ट हो खाना न खाते देख उसकी आँखें भीग जातीं। वह प्रायः पूछता—"बीबीजी कितने रोज़ में आयेंगी ?" बीबीजी के दर्शनों की उसे बड़ी साध थी। आखिर एक दिन 'बीबीजी' आईं।

× × ×

आते ही रानी ने विस्मय से आँखें फैलाकर पूछा—हैं, तुम्हें क्या हो गया ?"—कुछ भी तो नहीं है !" मैंने जवाब दिया।

"वाह आधे भी तो नहीं रहे। मुँह सूखकर कैसे काला पड़ गया है।" क्षुब्ध दृष्टि से रानी मेरी ओर देखने लगी। अपना मुख तो उस समय मैं देख नहीं सका। हाँ, अलबत्ता रानी के मुख पर ज़रूर चिन्ता की छाया दिखाई दी। परिहास के लिये, मानकर, कहा—"तुम तो माँ की गोद में जा मुझे भूल गईं, क्या करता ?" झूठे अपवाद से खीझकर उसने कहा—"झूठ-मूठ लिखते रहे मोटा हो रहा हूँ !" इतने में बदक़िस्मत फतेसिंह ने आ हाथ जोड़ 'नमस्ते' की।

रानी ने पूछा—"यही है तुम्हारा समझदार आदमी ?" रानी को सन्देह हो गया, सब ख़ूराक स्वयं खाकर फतेसिंह ने मुझे कमज़ोर कर दिया। वह उससे नाराज़ हो गई। रानी के साथ पुराना नौकर मिलखी भी था। फतेसिंह ने मिलखी को ऐसे देखा, जैसे उसका बड़ा भाई हो ! और मिलखी ने उसे देखा, प्रतिद्वंदी की दृष्टि से।

फतेसिंह को मैंने तुरन्त चाय बना लाने के लिये कहा। वह चाय बना लाया। रानी ने ट्रे की ओर देखकर पूछा—"यह क्या ? खाने के लिये घर में कुछ नहीं ?" फतेसिंह अपराधी की तरह स्तब्ध रह गया। उसे ढाढ़स देने के लिये मैंने कहा—"जाओ पाओ रोटी काटकर सेंक लाओ !"

टोस्ट के नाम से फतेसिंह को डर लगता था। वह कहता था—यह तो रुई की तरह जल जाते हैं। इसलिये चाय मैं यों ही पी लेता। मिलखी की ओर देखकर मैंने कहा—"जाओ, जाकर उसे बता दो !" चाय छोड़ते-छोड़ते एक प्याली को उठा रानी ने यों नाक सिकोड़कर देखा, मानो गन्दी नाली में से उठा, बिना धोये उसे वहाँ रख दिया गया हो। वह झुँझला उठी—"यह क्या गन्द तुमने पाल लिया है ?" और मिलखी को पुकार उसने हुक्म दिया—"हटाओ यह सब......साफ़ करके लाओ।"

पन्द्रह-बीस मिनिट में नये सिरे से लगी ट्रे आ पहुँचा। परन्तु न जाने क्यों, उन खस्ता टोस्टों और क़ायदे से बनी चाय में वह सन्तोष न हुआ जो फतेसिंह के अल्हड़ हाथों होता था। मिलखो की चुस्ती-फुर्ती देख फतेसिंह मुँह बाये रह गया। रानी मिलखी को ले घूम-घूमकर कमरों में सफ़ाई करवा सामान ढंग से रखवाने लगी और फतेसिंह को फटकारकर पूछती जाती—"यही तरीक़ा है ?...यही सफ़ाई है।"

सोने के कमरे में पलंग के सामने दस-पन्द्रह पुस्तकें और अख़बारों के पन्ने फैल रहे थे। उन्हें उठाने की न फतेसिंह को सुध रहती न मुझे। धोबी के यहाँ से जो कपड़े आये थे, वे आलमारी के सामने ढेर के ढेर पड़े थे और उतरे हुए कपड़े ग़ुसलखाने में। यह सब देख-देख रानी ऐसे खीझती जैसे

पानी के छींटे से बिल्ली। फतेसिंह मालकिन के तौर देख काँप ने लगा।

× × ×

तीसरे ही दिन—मैं अभी कॉलेज से लौटा न था। रानी बरामदे में बैठी कुछ सोज़नकारी कर रही थी। उसने पुकारा—"फतेसिंह एक गिलास पानी लाओ!" यत्न से गिलास माँज, ऊपर तक भर, हथेली पर टिका फतेसिंह ने फौरन रानी के सामने पेश किया। एक नज़र गिलास की ओर डाल रानी तीव्र दृष्टि से फतेसिंह की ओर देखती रही। फतेसिंह ने समझा, जरूर कुछ चूक हुई है। परन्तु वह चूक क्या है, सो वह कुछ समझ न सका! उसने आँखें झुका लीं। गम्भीरता से रानी ने पूछा—"तुम्हें पानी देने की भी तमीज़ नहीं?" और सुई की नोक से संकेत कर समझाया—"जब पानी लाओ, गिलास को तशतरी में रख उसे ढँक कर लाओ।" उस समय दया कर वह गिलास रानी ने उसके हाथ से स्वीकार कर लिया।

गिलास के सिरे से पानी की एक बूंद धीरे-धीरे नीचे फिसलती आ रही थी। एक घूँट रानी ने लिया कि वह बूँद उसकी सोज़नकारी पर आ गिरी। बूंद क्या गिर पड़ी, बिजली गिर पड़ी। क्रोध से उसने गिलास फुलवाड़ी में फेंक दिया और डाँटकर कहा—"निकल जा यहाँ से बदतमीज़, जानवर!"

जल की उस एक बूँद के बदले न-जाने कितनी बूँदें फतेसिंह की आँखों से गिर गईं, इसका लेखा किसी के पास नहीं। चतुर नौकरी पेशा लोगों की तरह वह अपमान सहने का आदी न था; नहीं तो क्षमा माँगकर टिक रहता। तुरंत उसका हिसाब कर दिया गया। वह चला गया। कॉलिज से लौट वह सब वृत्तान्त सुना। मन को बहुत चोट लगी। मुख से कुछ कह न

सका। इच्छा हुई फतेसिंह को ढूँढ़, उसे समझा-बुझाकर लौटा लाऊँ ; परन्तु कर न सका। उससे रानी की हेठी हो जाती।

× × ×

उस शनिवार लड़कों का कोई मैच था। सूर्यास्त के पश्चात् परेड के मैदान को चीरता हुआ चला आ रहा था। सहसा दोनों हाथ जोड़े फतेसिंह सामने आ खड़ा हुआ। मन के आवेश में उसके दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये और गद्गद स्वर में पूछा—"कहाँ चला गया था तू ?"

उसने लज्जा से अपने हाथ खेंच लिये। मुझे भी बोध हुआ परन्तु समीप किसी परिचित को न देख, अधिक अव्यवस्थित हुए बिना ही पूछा—"अरे अब कहाँ हो ?"

आँखें पोछते हुए उसने उत्तर दिया—कहीं नहीं ! अब वह गाँव लौट जायगा। उस समय यदि बस चलता तो फतेसिंह को घर लिवा लाता।

उस झुटपुटे अँधेरे में हम दोनों पास-पास खड़े रहे। भीगे हुए गले से फतेसिंह ने कहा—"बाबू जी गलती माफ करना। आप माँ-बाप हो ! आपका अन्न खाया है।" उसकी बात से चोट खा उसके कंधे पर हाथ रख जवाब दिया—"अरे जाने दो, यह सब कुछ नहीं।" और जेब से दस का एक नोट निकाल उसके हाथ में थमाते हुए आगे बढ़ गया।

कुछ क़दम से लौट कर देखा—वह खड़ा आँसू पोंछ रहा था। पुकारा—"फतेसिंह !" लपक कर वह समीप आ गया। उसे फिर समझाया—"घबराओ मत !"

उसने उत्तर दिया—"भूलना मत बाबू जी !" हँसकर मैंने कहा—"अच्छा ! चिट्ठी लिखोगे !" सिर हिलाकर उसने हामी भरी !

सात आठ बरस के बच्चे के लिखे जैसे अक्षरों में कभी-कभी फतेसिंह की चिट्ठी आती है। "श्री" से आरम्भकर उसमें वह अपने कल्याण की सूचना और हमारे कल्याण की कामना करता है। बड़े-बड़े अक्षरों में वह सदा रानी के लिये—'जै रामजीकी बाँचणा' भी लिखता है। परन्तु रानी को वह मैं कभी बता न सका!

× × ×

कड़ा जाड़ा आरम्भ होने पर जब रानी मोटे कोट निकाल हलके कोट आलमारी में बन्द करने लगी, जेबों की तलाशी में वह एक चिट्ठी उसके हाथ लग गई। अनेक बार पढ़ जाने पर भी चिट्ठी का सिर पैर उसकी समझ में न आया तो हँसती हुई आकर बोली—"वाह रे फिलासफ़र साहब! अब तुम लोगों के कूड़े-करकट में से उनकी चिट्ठियाँ बीन-बीनकर मनस्तत्व के किसी सिद्धान्त का आविष्कार करनेवाले हो क्या? देखती हूँ, तुम्हारी देख-रेख के लिये मुझे अब प्रतिक्षण साथ रहना पड़ेगा!"

चाहता तो हँसकर टाल देता। परन्तु एक कड़ी प्रतिज्ञा है—"हम दोनों परस्पर कोई रहस्य छिपाकर नहीं रखते। परन्तु; फतेसिंह के सम्बन्ध के रहस्य को उसकी अनुमति के बिना खोल डालना भी क्या एक प्रकार का विश्वासघात न होता............?"

इसलिये............!

गण्डेरी ३

दफ्तर बन्द होने का सरकारी समय पाँच बजे है। परन्तु बड़े बाबू छः-साढ़े छः से पहले नहीं उठते। उनसे पहले उठकर चल देना बेअदबी है। तिसपर जगमोहन ठहरा अप्रेंटिस। बड़े बाबू के उठने के बाद, कुछ दूर उनके पीछे-पीछे जा, तब एक गली से घूमकर वह घर आता है।

उस रोज़ जगमोहन दफ्तर से घर लौट कहीं बाहर न गया। ट्रंक खोल उसने धोबी का धुला कमीज़ और धोती निकाली। बहू ने विस्मय से आँख उठाकर पूछा—"यह क्या; अभी तीन ही दिन तो कपड़ा बदले हुए हैं, अभी से ?"

"हूँ, एक जगह जाना है।"—जगमोहन ने उत्तर दिया।

"कहाँ जाओगे ?"

"ऐसे ही एक जगह।"

बहू चौके में चली गई। उसे डर था, अधिक पूछने से नाराज़ हो जाँयगे। अभी उस रोज़ भी नाराज़ होगये थे।

जगमोहन सोचने लगा—न जाने क्या ख़याल करेगी, कहाँ जा रहा हूँ ?......बता देने में डर क्या है ? जरा दिल बहलाने जा रहा हूँ। आखिर दफ्तर में बैठे-बैठे आदमी थक भी तो जाता है। आदमी हूँ, पत्थर नहीं। न सिनेमा, न तमाशा। यह तो कहो गनीमत हुई कि इतना ज़ोर डालने पर राधेबिहारी ने

लड़के के मुण्डन पर मुजरा कराना मंजूर कर लिया। कैसा कंजूस है कि पैसा खर्चना ही नहीं चाहता।......इसे तो वहाँ जाना नहीं...फिर इसके जानने-न जानने से बनता-बिगड़ता क्या है ?

जल्दी-जल्दी खाना खाया। बहू से कहा—"दफ्तर के एक बाबू के यहाँ जाना है, ज़रा जा रहा हूँ। देर हो जायगी, तुम सो रहना। बाहर से ताला लगा जाऊँगा।"

नये कपड़े पहन, ज़रूरत के लिये जेब में चार पैसे डाल वह घर से निकला। बाज़ार में आते ही इच्छा हुई, एक सिगरेट ले ले। पैसे में पासिंग-शो का एक सिगरेट आता है, बीड़ियाँ बारह आती हैं। लेकिन महफिल में बीड़ी पीते हुए जाना ठीक नहीं। घर की बात दूसरी है। महफिल में सिगरेट ही पीना चाहिये और अच्छा सिगरेट पीना चाहिये। आबरू का ख़याल रखना ज़रूरी है।

उसने फैसला किया,वह कैंची का सिगरेट ख़रीदेगा। आखिर दफ्तर में बाबू है और वहाँ सब बाबू लोग होंगे। कैंची का सिगरेट डेढ़ पैसे में आता है, इसलिये तीन पैसे के दो लेने पड़ते हैं। तीन पैसे एक साथ खर्चना फिजूल है। कोई मेहमान हो तो एक बात भी है। सोचा, एक सिगरेट और एक पान ले लेगा और दो पैसे ख़र्च कर देगा। रोज़-रोज़ का ख़र्च थोड़े ही है ? हुआ एक दिन यह भी सही।

पान चबाते और सिगरेट पीते हुए वह महफ़िल में पहुँचा। सब लोग आ चुके थे। एक ओर साजिन्दे और बाईजी बैठी थीं। केवल बड़े बाबू की प्रतीक्षा थी। बाईजी की ओर देखकर लोग राधेलाल पर फबतियाँ कस रहे थे। कोई पूछता—"कहो यार क्या चवन्नी पर ठहराया है ?" कोई कहता—"नहीं, भाई पुराने ताल्लुक़ात हैं !"

मतलब यह कि बाईजी उम्र से उत्तर चुकी थीं। रंग रूप भी वैसा ही सा था। राधेलाल ने ढीठ होकर कहा—"शक्ल से क्या होता है? हम गुण देखते हैं। जानते हो, जानकीबाई तवे सी काली थीं!"

बड़े बाबू आये और मुजरा शुरू हुआ। साजिन्दों ने साज मिलाये। बाईजी ने घुँघरू की ताल देकर हाथ-पैर हिलाने शुरू किये। किसी के भी दिल में उमंग न उठी। किसी के भी दिल में स्पन्दन न हुआ। बाईजी ने रूखी सी काँपती आवाज़ में गाना शुरू किया :—

"पी के हम तुम जो चले झूमते मयख़ाने से........."

जगमोहन की बग़ल से किसी ने आवाज़ कसी—"वाह री, पैंतरा तो खूब लेती है?"

दूसरी आवाज़ आई—"अजी पूरी पटेबाज़ है।"

किसी ने कहा—"अरे इसके हाथ मे ढाल-तलवार दो तो लीलीघोड़ी का नाच अच्छा करेगी।"

यह सब कुछ बड़े बाबू के अदब से बहुत धीरे-धीरे कहा गया। दस-पन्द्रह मिनट तक मुजरा देखकर बड़े बाबू चले गये। उन्हें कुछ ज़ुकाम की शिकायत थी। उनके जाने पर नौजवानों का मौक़ा आया। बेधड़क आवाज़ें कसी जाने लगीं।

दर्शकों के असंतोष और विरोध का सामना बाईजी ने चेहरे पर मुस्कराहट लाकर किया। निरुत्साहित न हो उन्होंने कमर को और बल दिया। स्वर में 'दर्द' का पुट देने की चेष्टा कर और सीने पर हाथ रख कर गाया—

"गुज़र गया है ज़माना यार को गले लगाये हुए......।"

पर रूखे गले से 'दर्द' पैदा न हुआ, निस्तेज आँखों में चमक न आई और न कमर ही बल खायी।

तमाशबीन निराश हो गुल करने लगे। उस गुल को दबा देने और बाईजी को उत्साहित करने के लिये साजों को ख़ूब ज़ोर से बजाया गया। बाईजी ने भी घुँघरू बँधे पैरों को ज़ोर-ज़ोर से पटक-कर और कमर को दायें-बायें,अधिक हिलाकर गाना और नाचना शुरू किया। पर जान पड़ता था, जैसे उनके पैर लड़खड़ा रहे हों।

किसी ने ताना दिया—"वाह रे राधेलाल, तुम भी चमड़े के मोल भैंस ले आये।"

दर्शकों के व्यवहार से राधेलाल को क्रोध आ रहा था। वे सोच रहे थे, अच्छा-भला मुजरा हो तो रहा है। कोई गुल मचाये और न सुने, तो क्या हो? एक तो वे जेब का पैसा ख़र्च करें दूसरे उन्हीं को परेशानी हो! उनके लड़के का मुराडन है तो क्या हुआ?

उन्हें बाईजी पर भी क्रोध आ रहा था। साली, मुजरा नहीं जानती थी तो आई क्यों? हम जेब से पैसे निकालकर देंगे, कोई मज़ाक थोड़े ही है। वे परेशान हो रहे थे जैसे दर्शक और बाईजी दोनों ही उन्हें लूटने के लिये षड्यन्त्र किये बैठे हों।

बाईजी की साँस फूल गई। उन्होंने एक बीड़ा और बड़ी-सी चुटकी तम्बाक़ू स्फूर्ति के लिये होठों में दबा, अदा से बाँहें फैला, नए तर्ज़ से नई चीज कहना शुरू किया—

"मिलना गले से ग़ैरों के, हमसे बहाने बाज़ियाँ।
आये जब मेरे सामने, पर्दे में मुँह छिपा लिया॥"

बाईजी के आरोचक और सूखे शरीर के गले लग जाने के संकेत और हाव-भाव से दर्शकों के शरीर में स्फूर्ति के स्पन्दन की अपेक्षा ग्लानि ही हुई और उससे महफ़िल में बढ़नेवाले शोर के कारण कुछ सुनना सम्भव न रहा।

× × ×

जगमोहन को याद आ गया, एक बरस पहिले का एक नाच ! सेठ जीतूमल के यहाँ नाच हुआ था। बड़े-बड़े आदमियों की भीड़ थी। कनातों की साँधों से जगमोहन ने वह नाच देखा था।

कल्पना-सी सुन्दर वह परी, मानो वसन्त का पहला पुष्प, नन्दन कानन से लाकर महफ़िल में रख दिया गया हो। उसकी वह गर्व से उठी गर्दन, उसकी वे मस्तानी आँखें, वंशी से सुरीला उसका स्वर ! सुनते हैं, एक रात के उसने पाँच सौ लिये थे। नाच में मोहरें बरसी थीं। सुना था, उस एक रात में नरगिस ने एक हज़ार बना लिया था।

वह सोचने लगा—राधेलाल है एक ही कंजूस। साले ने पाँच रुपल्ली से एक कौड़ी ज़्यादा ख़र्चा नहीं होगा। यहाँ कोई दुअन्नी दिवाल नहीं। बाईजी भरसक नाज़ और अदा से सबके सामने घूम-घूम गईं पर किसी ने जेब में हाथ न डाला। बल्कि घृणा के स्वर में किसी ने कहा—"भुक्खड़ साली कहीं की।"

जगमोहन भी सोच रहा था—जब नाचते-गाते बन नहीं पड़ता तो यह यहाँ आई क्यों ? मज़ा बिगाड़ दिया। जब गाना नहीं जानती तो रुपये कोई काहे को देगा ? तभी सहसा उसे ध्यान आ गया बड़े बाबू की धमकी का। डिसपैच के रजिस्टर में टिकटों का हिसाब उसका दो दफ़े ग़लत हो चुका था। बड़े बाबू ने मामला साहब के सामने पेश कर दिया और उन्होंने हुकुम दिया, "अब ग़लती करे तो काम पर से हटा दो। तनख़्वाह काम के लिये दी जाती है।" जगमोहन कुछ सुस्त सा पड़ गया और फिर ख़याल आया बाईजी को गाने और नाचने के लिये पैसे मिलेंगे......पाँच रुपये !

वह समस्या को पैसों के हिसाब से सोचने लगा--एक

सारंगीवाला है, एक मजीरेवाला, एक तबलेवाला, एक हारमोनियमवाला और एक मशालची। कुल पाँच रुपये। एक-एक रुपया भी तो नहीं पड़ेगा। और फिर कौन रोज़-रोज़ मुजरा कराता है? तिस पर इस बेचारी का......?

उसने देखा बाईजी का गाना कोई नहीं सुन रहा। सब लोग अपनी-अपनी गप-शप में लगे हैं। सिर्फ़ राधेलाल कभी-कभी ग़ुस्से से डाँट देते हैं—"अरे ठीक ढंग से गाओ!"

उसने देखा बाईजी निढाल हो गा रही हैं। उनकी आँखों में न मद है, न मस्ती; बल्कि है निराशा और कातरता। मानो वे दोनों आँखें कह रही हैं—मैं तुम्हें रिझा रही हूँ, तुम रीझते क्यों नहीं! तुम्हारा मनोरंजन हो, तुम्हारा दिल बहले तो एक टुकड़ा हमें भी मिले। देखो, मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ, तुम खुश हो जाओ! मैं तो तुम्हारा मन बहलाने के लिये जान लड़ाये दे रही हूँ; तुम ख़ुश नहीं होते!

ऊँचे स्वर में चिल्लाकर किसी ने कहा—"राधेलाल, साली को एक पैसा देना मत! क़ब्र में पैर लटक रहे हैं, चली है मुजरा करने?"

कई आवाज़ों ने इस राय की ताईद की—"हाँ साली को कुछ नहीं मिलना चाहिए।"

जगमोहन सोचने लगा, लोगों को रिझाने की इतनी मेहनत करके बेचारी का यह हाल है......और आगे क्या होगा? मेहनत करने पर भी कोई ख़ुश न हो तो क्या किया जाय?..... साहब कैसे डाँट देते हैं—काम नहीं होता तो 'सैनाटोजन' खाया करो!

बिजली के उज्ज्वल प्रकाश में जगमोहन की नम आँखें चमक रही थीं। उसके सामने महफ़िल नहीं एक दूसरा ही दृश्य था—

बाईजी चीथड़ों में लिपटीं, टीन का कटोरा लिये गली के

कोने पर खड़ी दुआ देकर चुटकी फर आटा माँग रही हैं। उनके चारो ओर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। लोग उस ओर से नजर फेर चले जा रहे हैं, वहाँ जहाँ ताजे गुलाब को लज्जित करने वाली नरगिस, सुगन्ध के बादलों में लिपटी नरगिस, अपनी कटीली आँखें सैकड़ों दिलों के पार किये दे रही है...... स्वर की लहरों पर थिरक रही है। वह नरगिस जो सैकड़ों भद्र पुरुषों का स्वप्न है जो सैकड़ों धनाधीशों की कामना है। जिस नरगिस के ख़याल में, उसके गाये पदों को अधमुँदी आँखों से गुनगुनाकर सहस्रों सभ्य पुरुष लम्बी साँसें खींच लेते हैं।

गली में खोमचे वाले ने तीखे स्वर से पुकारा—"गुलाब वाली गण्डेरियाँ!"

जगमोहन ने सोचा—नरगिस है गुलाब वाली गँडेरी जिसके दर्शन से ही शीतलता और स्फूर्ति मिलती है। बाईजी भी गण्डेरी हैं परन्तु दाँतों में दबाकर चूसी जा चुकी हैं। अब उनमें रस कहाँ? अब उसका क्या दाम?

× × ×

लोगों के उठ खड़े होने से मुजरा बन्द कर दिया गया। क्रोध में थुथलाते हुए राधेलाल कह रहे थे—"साली बड़ी कलावंत बनती थी, दगा दिया हमको! एक पैसा नहीं मिलेगा। जगमोहन की जेब में दो पैसे थे और उँगली में ब्याह की अँगूठी। साजिन्दे राधेलाल को घेरकर उजरत के लिये झगड़ा कर रहे थे और बाईजी एक तरफ़ अन्धेरे में खड़ी, हाँफती हुई आँचल से पसीना पोंछ रही थीं।

जगमोहन की आँखें डबडबा आईं। करुणा के आवेश में विचार ठिकाने न रहें। उसने उँगली से अँगूठी खींच बाईजी के हाथ पर रख दी और चुपचाप घर लौट आया।

दूसरे दिन खाली उँगली देख बहू ने पूछा—"हाय, अंगूठी क्या हुई ?"

झेंपते हुए जगमोहन ने उत्तर दिया—"कहीं गिर गई।"

बहू ने शंका से पूछा—"सच ?"

जगमोहन के पैर फिसल गये, बोला—"दे दी !"

—"रात मुजरे में !"

—"हाँ, पर वह बात नहीं......बहुत ग़रीब थी !"

बहू रोने लगी।

बहू कई दिन रोती रही—"यह ऐसा करेंगे तो हमारा कौन ठिकाना है ?"

जगमोहन चाहता था बहू को समझा दे। उसे गुलाबवाली गण्डेरी और चूसी हुई गण्डेरी की बात समझा दे। पर ठीक़ से कहते न बनता था......।

कुछ समझ न सका ! ४

तस्वीर महल* के तालाब की सीढ़ियों पर खड़ा व्यास घने वृक्षों और संध्या के गुलाबी आकाश की जल में पड़ती परछाईं देख रहा था। व्यास के समीप खड़ी मिसेज़ जोशी की ओर देखे बिना ही, मिस्टर जोशी ने गहरे विचार में घास पर चहल-क़दमी करते हुए पुकारा—"सुजला, अब चलोगी नहीं ?"

वह सन्देश व्यास तक पहुँचाने के लिये, कुछ ऊँचे स्वर में सुजला ने उसकी ओर देखकर पूछा—"अब चलियेगा भी ?"

जैसे ध्यान से चौंककर, व्यास ने कहा—"हाँ......मैं स्वप्न देखने लगा था।"

"वह क्या ?"—सुजला ने विस्मय के स्वर में पूछा।

"यही कि मैं वाजिदअली शाह बन गया हूँ। इस तालाब की सीढ़ियों पर अप्सरा सी सुन्दर अनेक युवतियाँ..."—आँख उठाकर उसने मिसेज जोशी की ओर देखा। उनके चेहरे पर आती संकोच की लाली देख वह चुप हो गया।

नवाब वाजिदअलीशाह बनने की बात अधूरी छोड़ दोनों हाथों के अँगूठों से कोट की जेब के किनारों पर बोझ डाल, जूतों को तस्वीरमहल की कोमल घास के मैदान पर घसीटता हुआ, वह

---

* लखनऊ की 'पिक्चर गैलरी।'

सुजला के दायें हाथ चला जा रहा था। उसकी दृष्टि पश्चिमी क्षितिज पर समाप्त होती हुई, घने वृक्षों की संधियों से दिखाई दे रही गहरी लाली की ओर थी। बसेरे के लिये वृक्षों की चोटियों पर बैठने से पूर्व कौओं की गोष्ठी का शब्द कानों में गूँज रहा था। पर इस सबके भीतर से, उसकी दृष्टि के सम्मुख सुजला के चेहरे पर वाजिदअलीशाह और अप्सरा-सी सुन्दर युवतियों की चर्चा से फैल जानेवाली लाली और उसकी कलफ़ लगी साड़ी की सरसराहट उसके कान में गूँज जाती थी। तंग आस्तीन के म्यान में कसी उसकी सुगोल बाँह की स्मृति उसे याद दिला देती थी कि वह केवल कुछ ही इंच दूरी पर है। सुजला यदि वह अपनी सुन्दर सुखद बाँह से व्यास की बाँह का सहारा ले ले, इससे व्यास को कितना सहारा मिल सकता है। परन्तु उसने उद्दण्डता से जैसी अश्लील बात उसके सामने कहनी शुरू कर दी थी, इससे वह कितनी नाराज़ हो गई होगी।

सुजला के बाईं ओर चलते हुए जोशी अपनी ठेके की इमारत के विषय में सोच रहे थे, सीमेण्ट की जगह रेत किस अनुपात में मिलाई जा सकती है ?

व्यास को स्वयम् अपने प्रति क्रोध आ रहा था ; क्यों सदा ही वह तीखी और कड़वी बात सुजला के सामने कह देता है। किसी के सहने की भी कोई हद होती है। अपने विचार से व्यास सोच-समझकर ही ऐसा करता आया है। इसलिए कि मिसेज़ जोशी के प्रति किसी भी प्रकार अनुराग या आकर्षण दिखाने से मिस्टर जोशी के यहाँ उसके लिये कोई स्थान न रह जायगा। और सुजला भी यदि उसके मन में कभी-कभी उठनेवाली कामना को जान पाये, तो व्यास के प्रति उसका सब आदर क्या सहसा घृणा में नहीं बदल जायगा ?

उस मौन के बोझ को दूर करने के लिये सहसा सुजला ने कहा—"लखनऊ के नवाबों को स्त्रियों की वे आहें ही तो ले मरीं!"

तालाब की सीढ़ियों पर अप्सरा-सी सुन्दर युवतियों के स्वप्न पर सुजला का यह ताना समझने में व्यास को अड़चन न हुई। स्त्रियों की स्वतन्त्रता और समान अधिकार की वह विशेष पक्ष-पातिनी है, यह व्यास खूब जानता था। स्वयं उसने ही इस विषय पर कितनी ही दलीलें और तर्क समय-समय पर सुजला को सुझाये थे। परन्तु उस सन्ध्या उसका भाव दूसरा ही था। अपने रूप के आकर्षण से इच्छा की जो आग, जाने या अनजाने में, व्यास के हृदय में वह सुलगा देती थी और फिर अपने आदर-पूर्ण निस्संकोच व्यवहार का पंखा डुलाकर जिस आग में वह लौ निकालकर व्यास को धधकने के लिये अकेला छोड़ देती थी, उसकी प्रतिहिंसा में व्यास खीझ उठा था।

सुजला के ताने का उत्तर व्यास ने उसी के 'रंग' में दिया। दृष्टि क्षितिज पर से हटाये बिना ही उसने कहा—"ऐसा ही होगा, परन्तु यदि मुर्गियों के श्राप से मनुष्यों का सर्वनाश हो सकता तो यह पृथ्वी कभी की मनुष्यहीन हो गई होती।"

सुजला का क्षोभ मानो उबल पड़ा। व्यास के मुख की ओर घूरकर उसने कहा—"यानो स्त्रियों की बराबरी आप मुर्गियों से कर रहे हैं?"

अपने चेहरे पर सुजला की दृष्टि के स्पर्श को अनुभव करके भी व्यास की आँखें सामने क्षितिज की ओर ही लगी रहीं। अपने जूतों को भी वह घास पर उसी प्रकार घसीटता रहा, मानो आलस्य से सजग हो जाने लायक बात सुजला की नहीं थी। अलसाये से ही स्वर में उसने उत्तर भी दिया—"नहीं, एकदम

मुर्ग़ियों से बराबरी ठीक नहीं। मुर्ग़ियों में मस्तिष्क बहुत कम रहता है। वे शायद उतना अनुभव भी नहीं कर सकतीं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि पुरुष के लिये उपयोगी जीवों में स्त्री का स्थान सबसे ऊँचा है।"

खीझ में कुछ थुथलाकर सुजला ने कहा—"पुरुषों के अभिमान की हद है...अपने आपको वे न जाने क्या समझते हैं ?"

मि० जोशी को जैसे इस बहस से कुछ मतलब न था, इस ढंग से वे अपनी ठेके की इमारत के हिसाब को सोचते चले जा रहे थे। सहसा टोककर उन्होंने पूछा--"हाँ व्यास, इंजीनियर रहमान से तो तुम्हारे असिस्टेण्ट (मातहत) रिज़वी का परिचय है न ?"

सुजला की बात का जवाब शान्ति से देने के लिये व्यास ने पहिले जोशी के ही प्रश्न का उत्तर दिया—"रहमान रिज़वी का बहनोई है। उससे जो भी काम हो, हो जायगा।" और तब सुजला के उत्तेजित चेहरे की ओर एक दृष्टि डाल और उससे कुछ भी विक्षिप्त हुए बिना उसने कहा—"पुरुष जो कुछ हैं, उससे अधिक अपने आपको नहीं समझते। स्त्रियाँ जो कुछ वे नहीं हैं, पुरुषों की दया से अपने आपको समझने का यत्न करती हैं।"

व्यास की इस चोट से सुजला लगभग आपे से बाहर हो तड़प उठी। अपने आपको सँभालने के लिये शाल के भीतर दोनों बाहों को अपने ब्लाउज़ पर दबाते हुए उसने कहा--"वाह साहब, इतना तो पुरुष स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं, तिस पर दया का इतना अभिमान है।"

एक उड़ती हुई नज़र सुजला की ओर डालते हुए व्यास ने फिर उसी उपेक्षा के अलसाये हुए ढंग से उत्तर दिया--"पुरुष स्त्रियों पर अत्याचार कुछ भी नहीं करते। केवल अपनी आव-

श्यकता के अनुसार उनका उपयोग करते हैं। पुरुषों के लिये उपयोगी होने के कारण ही स्त्रियों की क़द्र और उनका ध्यान रखा जाता है। जब स्त्री पुरुष की इच्छा या आवश्यकता की उपेक्षा कर केवल अपनी क़द्र और ख़ातिर करवाना चाहती है तो अलबत्ता स्त्री को ढंग पर लाने के लिये पुरुष को कुछ अनुशासन काम में लाना पड़ता है।"

क्रोध से सुजला के ओठ थिरक उठे परन्तु शब्द मुख से निकलने में अड़चन अनुभव हो रही थी। वह केवल इतना कह पायी—"स्त्री मानो पुरुष की सम्पत्ति हो!"

सुजला को इतनी चोट पहुँचाकर भी व्यास को संतोष न हुआ। उसने फिर कहा—"स्त्रियाँ पुरुषों की सम्पत्ति होने से इन्कार भले ही करें, परन्तु उन्हें अभिमान है पुरुषों की सम्पत्ति और दासी होने का ही। पतिव्रता और सती-साध्वी होने के अभिमान का मतलब और है ही क्या......?"

बीच में टोककर जोशी ने कहा—"छोड़ो भी इस बहस को; कहाँ बैठी हैं आजकल ऐसी पतिव्रता......?"

सुजला के क्रोध की अग्नि में मानो घी पड़ गया। सहसा खड़ी हो पति की ओर आग्नेय नेत्रों से घूरकर उसने धमकी के स्वर में कहा—"क्या, क्या मतलब तुम्हारा?"

कहकहे से सिर हिलाते हुए जोशी ने उत्तर दिया—"माफ करो भई, हैं, पतिव्रता ही हैं।"

व्यास ने अपनी बात को हँसी में न उड़ जाने दिया। उसने फिर कहा—पतिव्रता का मतलब है, जैसे हिन्दुस्तानी अपनी राजभक्ति का अभिमान कर रायसाहब बनने का अरमान रखते हैं; उसी तरह स्त्रियाँ भी पति की सम्पत्ति होने के अभिमान में पतिव्रता और साध्वी बनती हैं और स्वतंत्रता का दावा भी करती हैं।"

इतना बक जाने पर जैसे व्यास को कुछ संतोष हुआ। वह मुस्करा देना चाहता था परन्तु सुजला के चेहरे पर क्रोध और गम्भीरता की छाप देख वह चुप रह गया।

बात-चीत में वे इमामबाड़े के सामने से जानेवाली सड़क पार कर घास पर चहल-क़दमी करते हुए गोमती-किनारे की सड़क पर आ पहुँचे। संध्या का अन्धकार छाने से पूर्व ही आकाश में त्रयोदशी का चन्द्रमा उज्ज्वल हो उठा। कब सूर्य की अन्तिम किरणें लोप होकर चाँदनी ने उनका स्थान ले लिया, यह जान न पड़ा। वृक्षों के नीचे काली परछाई और वायु की शीतलता ने ही उस ओर ध्यान आकर्षित किया।

जोशी ने कहा—"आह! आज मौसम कितना अच्छा है!" और अपना लखनऊ का काम समाप्त कर नैनीताल में एक अच्छा ठेका मिल सकने की चर्चा शुरू कर दी। अनिच्छा होने पर भी व्यास को उस बात-चीत में संक्षिप्त से उत्तर देने पड़ रहे थे। बहस से बचने के लिये वह हामी भरता जा रहा था। सुजला को आज उसने अधिक नाराज़ कर दिया है, इस बात का क्षोभ व्यास के मन को व्याकुल किये था। लोहे के पुल के समीप आकर उसने जोशी को सम्बोधन कर कहा—यहाँ से आप लोग भी तो घर जायँगे। क्यों न मैं भी एक टाँगा लेकर घर की राह लूँ?"

उत्तर दिया सुजला ने—"ऐसी क्या जल्दी पड़ी है आपको?" स्वर में झुँझलाहट थी और था अधिकार तथा मान। नदी की ओर से एक मल्लाह ने आगे बढ़कर कहा—"नाव की सैर कीजियेगा हुजूर!"

"हाँ-हाँ"—कहते हुए जोशी किराया तय करने के लिये घाट की ओर उतर गया।

निरुद्देश्य दृष्टि से वृक्षों की चोटियों के ऊपर कहीं दूर कुछ ढूँढ़ते हुए व्यास ने धीमे स्वर में क्षमा-याचना के ढंग से कहा—"आप इतनी नाराज़ हो गईं।"

स्वर में क्रोध का पुट क़ायम रखने का यत्न करते हुए नदी की ओर दृष्टि फेर सुजला ने उत्तर दिया—"आप जानबूझ कर बातें ही ऐसी करते हैं।"

घाट पर से जोशी ने पुकारा—"आओ न नाव पर।" और स्वयम् आराम की जगह पर बैठ जाने के लिये वह मल्लाह की जगह को लाँघ नाव के सिरे के तख्ते पर बैठ गया। सुजला के उस ओर जाने के लिये क़दम उठाने पर मल्लाह ने टोका—"हुजूर उधर बोझ बढ़ जायगा।" वह बीच ही में खड़ी थी। व्यास एक पैर से उचक कर नाव पर चढ़ आया। नाव के डगमगा जाने से घबरा कर सुजला के मुख से हल्की-सी चीख निकल गई और डगमगा कर गिर जाने के भय से उसके दोनों हाथ व्यास के कंधे पर जा टिके। उसे सहायता देने के लिये व्यास के हाथ ऊपर उठना ही चाहते थे, उसने उन्हें रोक लिया और उसके ओठ दब कर रह गये। उसे याद आ गया वह दिन, कुछ सप्ताह पूर्व, जब उसने बिना कुछ समझे-बूझे एक शर्त बदने के मौके पर सुजला से कह दिया था,—"अच्छा मिलाओ हाथ।" और उसने पीछे सिकुड़ कर इन्कार कर दिया था—वह हाथ किसी से नहीं मिलाती।

वायु के थपेड़ों से गोमती का गँदला जल काँप रहा था और उसमें काँप रही थी चाँद की परछाईं। व्यास की कल्पना में काँप रही थीं अगली-पिछली बातें! नदी पार तट पर के मकानों और झोपड़ियों की ओर संकेत कर सुजला ने कहा—"उन लोगों को तो यह सुन्दर दृश्य देखने की सुविधा सदा ही रहती होगी।"

"लेकिन, शायद उन लोगों ने कभी ख्याल भी न किया होगा कि नदी सुन्दर है। चाँद का उपयोग उनकी दृष्टि में रात के समय बिना दिया-बत्ती के कुछ दूर तक देख पाने से अधिक नहीं।"—उपेक्षा से व्यास ने उत्तर दिया।

"हाँ जी और क्या?"—जोशी ने हामी भरी—"ग़रीब लोग इन सब बातों को नहीं देखते, सवाल सब पैसे का है।"

"पर पैसे वाले तो पैसे में ऐसे रम जाते हैं कि उसमें अपने आपको भी भूल जाते हैं।"—सुजला ने उत्तर दिया।

"ठीक वैसे ही"—व्यास ने उसके मुँह की बात पकड़ते हुए कहा—"जैसे बहुत से नियम और धर्म मनुष्य के लिये बनाये गये हैं परन्तु उनके लिये मनुष्य अपने आपको ही भुला देता है।"

"वाह साहब, वह कैसे?"—व्यास की ओर देख सुजला ने पूछा।

"यह तो समझ पाने की बात है।"—व्यास ने उत्तर दिया और मन में सोचा, क्या सचमुच सुजला समझ पायेगी? उसने सुजला की ओर दृष्टि डाली और उनकी आँखें चार हो गई। सहसा ही व्यास की दृष्टि नाव की तली से होती हुई नदी के जल की ओर चली गई और फिर चन्द्रमा की ओर।

जोशी बेपरवाही से व्यास का समर्थन कर रहा था—"यह धरम-वरम कुछ नहीं जी, सब ख़्याल है।"

इतने समीप से सुजला से चार आँखें होने पर व्यास के रक्त की गति तीव्र हो गई। उसने सोचा, वह बिल्कुल उसकी ओर देख रही थी, पर क्यों? शायद इस आशा से कि वह भी उसकी ओर देखेगा? और वह किस प्रकार देख रही थी? उस दृष्टि में गहराई थी!

इससे पूर्व सुजला का ध्यान आने से अपन जिन विचारों के

लिये अपराध और लज्जा के अनुभव से वह अपने आपको धिक्कारने लगता था, वे सब पल भर में लहरा उठे। एक विचित्र उत्साह से उसके शरीर में फुरफुरी-सी आ गई और उसने सोचा, कायर तो वह स्वयम् ही है। एक बार फिर उसके मन में इच्छा हुई कि वह साहस कर आँख भरकर सुजला की ओर देखे। लेकिन शायद इससे सुजला को संकोच हो ! उसे ही मन भर देख लेने का अवसर दिये रहने के लिये वह मन मार अपनी दृष्टि इधर-उधर किये रहा। परन्तु उसका रोम-रोम पुलकित होकर सुजला की ओर दौड़ रहा था।

छतर मंजिल की ऊँची इमारत की छाया में से होकर नाव धीरे-धीरे आगे बढ़ती जा रही थी। सुजला चाँदनी रात में नदी के सौन्दर्य को भरसक पी जाने का यत्न कर रही थी। जोशी अँगुलियों से नाव के तख्ते पर ताल देता हुआ नैनीताल में नया ठेका पा सकने की बात सोच रहा था और व्यास ; जीवन की मरुभूमि में हाँफता हुआ समीप के हरियाली भरे बाग़ के झरने से एक घूँट मीठा जल पी लेने का साहस बाँध रहा था।

× × ×

व्यास का वह पहला विचार कि भलामानुस योग्य पति और दो बच्चों को पाकर फिर सुजला को संसार में किसी ओर देखने की क्या आवश्यकता है ; उसे दूसरे के अभाव को अनुभव करने की ज़रूरत क्या; उस रात गोमती के चाँद की चाँदनी से रुपहले जल में घुलकर बह गया। ओठ दबा-दबाकर उसने सोचा और निश्चय किया, जो हो एक दफ़े वह सुजला के यहाँ जोशी के घर न रहते समय जायगा......जब बच्चे अभी स्कूल से लौटे न हों।

सुबह आठ बजे जाकर जोशी बारह बजे लौटता था और

फिर दो बजे जाकर संध्या छः बजे । व्यास धड़कते हृदय से चार बजे के लगभग जोशी के घर पहुँचा । मकान के सामने पहुँचते ही दरवाजे के भीतर से सुजला के स्वागत में मुस्कराती आँखें दिखाई दीं। व्यास ने कहा—"रिज़वी से उसने इंजीनियर रहमान के सम्बन्ध में बात-चीत की थी। उसी मतलब से भाई साहब को वह रिज़वी के साथ ले जाकर रहमान से मिला देना चाहता था......पर वे तो हैं ही नहीं।"

सुजला ने कहा—"तो आप बैठिये तो, आपके भाई साहब भी आ जायँगे। अक्सर छः बजे आते हैं; जल्दी भी आ सकते हैं। आपके लिये चाय बनवाऊँ।"

"नहीं-नहीं, मुझे कौन आदत है। पर भाई साहब के आने में तो दो घण्टे हैं। इतनी देर बैठने से क्या होगा ?" सोफ़ा पर बैठते हुए व्यास ने कहा।

"अजी आप बैठिये तो"—कह कर सुजला बगल के कमरे में चली गई और कुछ ही सैकण्ड में लौट कर उसने पूछा—"फिर आपके लिये क्या मँगाया जाय ?" और दूसरी ओर निकल गई। कुछ सैकण्ड बीतने से पहले ही वह फिर लौटी, मानो वह बहुत व्यस्त हो।

"अब मैं अकेला क्या बैठूँ"—व्यास ने साहस कर उदास से स्वर में कहा। परन्तु उसका शरीर कण्टकित हो रहा था। शब्द मुख से इतने धीमे स्वर में निकले, मानों गले में काँटे भर रहे हों।

"क्या कहा आपने ?"—भँवें चढ़ाकर लज्जा भरी मुस्कान से सुजला ने पूछा और समीप की कुर्सी पर बैठ गई।

"कुछ नहीं"—व्यास ने उत्तर दिया—"आप काम में लगी हुई थीं, यों ही आकर आपके काम में मैंने विघ्न डाल दिया।"

"नहीं तो"—गर्दन हिलाकर सुजला ने कहा—"काम तो मुझे ख़ास कुछ भी इस समय नहीं। ऐसे ही कपड़े सहेजने लगी थी।"

उसके गहरे गेहुआँ रंग पर छा गई हल्की लालिमा से व्यास ने समझा, सुजला समझती न हो, सो बात नहीं। स्वयम् उसके हल्के साँवले चेहरे पर रक्त के वेग के चिह्न प्रकट हो रहे थे। दोनों हाथों से अपना सम्पूर्ण साहस बटोर कर उसने कहा,—"आप कुछ नाराज़ हैं ?"

अपनी बड़ी-बड़ी फैली हुई आँखें उसकी ओर उठाकर सुजला ने कहा—"नहीं तो, नाराज़ तो आप ही हो जाते हैं।"

—"तो फिर आप वहाँ इतनी दूर क्यों बैठी हैं ?"

कुर्सी को खींच सोफ़ा से बिल्कुल सटाते हुए मुस्कराकर सुजला ने कहा—"लीजिये, बस !"

व्यास फिर चुप रह गया। सुजला ने पूछा—"अब आप चुप क्यों हैं ?"

व्यास का मन जिस बात के लिये व्याकुल हो रहा था, वह मुख से कहने का विषय न था। अपने साहस से कुछ क्षण भयंकर संग्राम कर उसने सहसा अपनी दोनों बाँहें सुजला के गले में डाल दीं। उसके मुख की ओर वह अपना मुख ले जा रहा था कि सुजला काँप उठी, जैसे बिजली का तार छू गया हो !

व्यास की बाँहें ढीली पड़ गईं। कुछ न समझकर वह एकटक सुजला के मुख की ओर देख रहा था। सहसा दो बड़े-बड़े आँसू सुजला की आँखों से गालों पर टपक पड़े। व्यास की बाहें अपने स्थान को लौट गईं। सोफ़े की बाँह को अपने पंजे में जकड़ते हुए उसने अपने ओंठ दबा एक क्षण कुछ सोचा और लम्बे क़दम रखता हुआ वह मकान के बाहर निकल चला गया।

× × ×

पिछली संध्या से व्यास अपने पलँग पर पड़ा था। कम्पनी की नौकरी के बहुत ज़रूरी काम से भी वह उठ न सका। ग्लानि और आत्म-तिरस्कार के भाव से उसे मर जाने की इच्छा हो रही थी। वह सोच रहा था, वह स्वयम् पापी और नीच था ही, परन्तु दूसरे के निर्दोष स्नेह को भी उसने पाप की वासना समझा।

उसके पहाड़ी नौकर ने समझा, साहब को शायद बुखार, पेट-दर्द या सिर-दर्द ने आ दबाया है। फ़िक्र में वह दूसरे कमरे में बैठा रहा। एक दफ़े साहस कर वह भीतर आया और उसने पूछा—"कोई दवा लाना होगा ?"

हाथ के इशारे से इन्कार कर व्यास ने उसे बाहर चले जाने का संकेत कर दिया। कई घण्टे बाद नौकर ने फिर आकर पूछा कि वह दूध गरम कर दे। वही पहले का-सा संकेत था। वह लौट गया। व्यास छत की ओर देखता माथे पर हाथ रखे पड़ा रहा। केवल तिपाई पर पड़ी टाइमपीस की सुइयाँ उसे समय के बीतने की बात बता रही थीं। उसके मातहत रिज़वी के आने पर उसे भी बाहर से लौट जाना पड़ा।

लगभग सूर्यास्त के समय उसे आहट से जान पड़ा कि बाहर नौकर से किसी ने कुछ पूछा है। कुछ समझ सकने से पहले ही ऊँचे स्वर में डाँट सुनाई दी—"क्यों बे मक्कार !"

कोई सन्देह न रहा, आवाज़ जोशी की थी। एक क्षण के सौवें भाग में सब सम्भावनायें व्यास के मस्तिष्क में नाच गईं। कैसे रोकर सुजला ने उसके पाप-कृत्य की शिकायत जोशी से की होगी और वह अपने अपमान का बदला लेने आया है।

भय के आक्रमण ने आत्म-ग्लानि और पश्चात्ताप के भाव को पलक मारते मिटा दिया। यों पलँग पर लेटे-लेटे मर जाने के लिये वह तैयार नहीं।

पिछले साम्प्रदायिक दंगे के दिनों में आस-पास की विरोधी बस्ती के आतंक से एक छुरी लाकर उसने रख ली थी। अभ्यास के अनुसार वह छुरी अब भी उसके तकिये के नीचे पड़ी रहती थी। उस छुरी को उठा, पलक मारते में वह लपक कर कमरे के कोने में जा खड़ा हुआ।

—"पन्द्रह मिनट के लिये भी तुझसे इन्तजार नहीं हो सकता था क्यों बे; यों भागा चला आया ?"

कुछ समझ पाने का यत्न व्यास कर रहा था, उसी समय जोशी के आगे-आगे चंचल क़दमों से कमरे में प्रवेश किया सुजला ने। हँसती हुई वह कह रही थी—"यह तो चाहते हैं, दुनिया इनकी ख़ुशामद करे! हर बात में यह दूसरों से ही ख़ुशामद करवाना चाहते हैं!—क्यों साहब रूठना आपको बहुत अच्छा आता है ?"

व्यास तब भी कुछ न समझ सका।

दुःख का अधिकार

५

पोशाक मनुष्य को विभिन्न श्रेणियों में बाँटनेवाली सीमा है। पोशाक ही समाज में मनुष्य का अधिकार और उसका दर्जा निश्चित करती है। वह हमारे लिये अनेक बन्द दरवाज़े खोल देती है। परन्तु कभी ऐसी भी परिस्थिति आ जाती है जब हम नीचे झुककर मनुष्य की निचली श्रेणियों की अनुभूति को समझना चाहते हैं; उस समय यह पोशाक ही बन्धन और पैर की बेड़ी बन जाती है। जैसे वायु की लहरें कटी हुई पतंग को सहसा भूमि पर नहीं गिर जाने देतीं, उसी प्रकार हमारी पोशाक, खास परिस्थितियों में हमें झुकने से रोके रहती है।

बाज़ार में फुटपाथ पर कुछ ख़रबूज़े डलिया में और कुछ ज़मीन पर फैलाये एक अधेड़ उमर की औरत बैठी रो रही थी। ख़रबूज़े बिक्री के लिये थे। परन्तु उन्हें ख़रीदने के लिये कोई कैसे आगे बढ़ता। जब उन्हें बेचनेवाली कपड़े से मुँह छिपाये सिर को घुटनों पर रखे फफक-फफक कर रो रही थी?

आस-पास की दुकानों के पटड़ों पर बैठे या नीचे खड़े आदमी घृणा से उसी के सम्बन्ध में जिक्र कर रहे थे। उसका रोना देख मन में एक व्यथा-सी उठी पर उसके रोने का कारण जानने का उपाय?

यह पोशाक ही व्यवधान बन कर खड़ी हो गई। घृणा से एक तरफ थूकते हुए एक आदमी ने कहा—"क्या ज़माना है? जवान लड़के को मरे एक दिन नहीं बीता और यह बेहया दुकान लगा के बैठी है।" अपनी दाढ़ी खुजाते हुए दूसरे साहब कह रहे थे—"अरे जैसी नीयत होती है वैसी ही अल्ला बरक़त भी देता है।"

एक तरफ कुछ दूर खड़े हुए एक आदमी ने दियासलाई से कान खुजाते हुए कहा—"अरे इन लोगों का क्या? यह कमीने लोग टुकड़े पर जान देते हैं। इनके लिये बेटा-बेटी, खसम-लुगाई, धर्म-ईमान, सब रोटी का टुकड़ा है।"

परचून की दूकान पर बैठे लालाजी ने कहा—"अरे भाई उनके लिये मरे-जिये का कोई मतलब न हो पर दूसरे के धर्म-ईमान का तो ख़्याल करना चाहिए! जवान बेटे मरे का तेरह दिन का सूतक होता है और यह यहाँ सड़क पर बाज़ार में आ ख़रबूज़े बेचने बैठी है। हज़ार आदमी आते हैं, जाते हैं। कोई क्या जानता है कि इसके घर सूतक है? कोई इसके ख़रबूज़े खा ले तो उसका ईमान-धर्म क्या रहेगा? क्या अंधेर है।"

× × ×

पास पड़ोस में पूछने पर जान पड़ा—उसका तेइस बरस का जवान लड़का था, उसकी बहू है और पोता पोती। शहर के पास डेढ़ बीघा भर ज़मीन में कछियारी करके वह अपना निर्वाह करता था। ख़रबूज़ों की डलिया बाज़ार में पहुँचा कर कभी लड़का सौदे के पास बैठता कभी माँ। परसों के रोज़ सुबह मुँहअँधेरे लड़का बेलों में से पके ख़रबूज़े चुन रहा था। गीली मेड़ की तरावट में विश्राम करते हुए साँप पर पैर पड़ने से साँप ने लड़के को काट खाया।

माँ बावली होकर ओझा को बुला लाई, झाड़ना-फूंकना हुआ, नागदेव की पूजा हुई। पूजा में दान-दक्षिणा चाहिए। घर में जो कुछ आटा और अनाज था, दान दक्षिणा में उठ गया। माँ, बहू और बच्चे 'भगवाना' से लिपट-लिपटकर रोये पर भगवाना जो एक दफ़े चुप हुआ तो फिर न बोला। सर्प के विष से उसका सब बदन काला पड़ गया।

ज़िन्दा आदमी नंगा भी रह सकता है परन्तु मुर्दे को नंगा कैसे बिदा किया जाय ? उसके लिये तो बजाज़ की दुकान से नया कपड़ा लाना ही होगा ! चाहे उसके लिये माँ के हाथों के छन्नी-ककना ही क्यों न बिक जायँ !

× × ×

भगवाना चला गया और घर में जो कुछ चूनी-भूसी थी सो उसे बिदा करने में चली गयी। बाप नहीं रहा तो क्या ? लड़के सुबह उठते ही भूख से बिलबिलाने लगे। दादी ने उन्हें खाने को ख़रबूज़े दिये, लेकिन बहू को क्या दे ? उसका बदन बुख़ार से तवे की तरह तप रहा था। आज बेटे के बिना उसे दुअन्नी-चवन्नी कौन उधार देगा ?

रोते-रोते और आँखें पोंछते बुढ़िया भगवाना के बटोरे हुए ख़रबूज़े डलिया में समेटकर बाज़ार को चली—और चारा ही क्या था ?

वह आई थी ख़रबूज़े बेचने का साहस कर परन्तु चादर सिर से लपेटे, सिर को घुटनों पर टिकाये, फफक-फफक कर रो रही थी।

× × ×

"कल जिसका बेटा चल बसा, आज वह बाज़ार में सौदा बेचने चली है, हाय रे पत्थर का दिल ?" उसके दुःख का

अन्दाज़ा लगाने के लिये पिछले साल अपने पड़ोस में पुत्र की मृत्यु से दुखी माता की बात सोचने लगा......जो पुत्र की मृत्यु के बाद अढ़ाई मास पलंग से उठ न सकी थीं। पन्द्रह-पन्द्रह मिनिट बाद जिन्हें पुत्र वियोग से मूर्च्छा आ जाती थी, और मूर्च्छा न आने की अवस्था में आँखों से आँसू न रुकते थे। दो-दो डाक्टर हरदम सिरहाने बैठे रहते। हरदम सिर पर बरफ़ रखी जाती ......शहर भर के लोगों के मन उस पुत्र-शोक से द्रवित हो उठे थे।

जब मन को सूझ का रास्ता नहीं मिलता तो बेचैनी से क़दम तेज़ हो जाते हैं। उसी हालत में नाक ऊपर उठाये, राह चलतों से ठोकरें खाता मैं चला जा रहा था यह सोचता—"शोक करने, ग़म मनाने के लिये भी सहूलियत चाहिए और......दुखी होने का भी एक अधिकार होता है ....।"

पराया सुख ९

सूर्योदय हो गया है या नहीं, जान नहीं पड़ता था। आकाश घने बादलों से घिरा था। पानी के बोझ से भारी ठण्डी हवा कुछ तेज़ी से चल रही थी। पठानकोट स्टेशन के मुसाफ़िरख़ाने में बैठे पहाड़ जानेवाले यात्री, कपड़ों में लिपट-लिपट कर लारियों के चलने के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। लारियों के ड्राइवर मुसाफ़िरों की तलाश में इधर-उधर दौड़ रहे थे। जितनी चिन्ता मुसाफ़िरों को आगे जाने की थी उससे कहीं अधिक थी इन ड्राइवरों को उन्हें उनके स्थान पर पहुँचा देने की।

स्टेशन के लम्बे सूने प्लेटफ़ार्म पर कभी कोई रेलवे कुली नज़र आ जाता। मि० सेठी मोटा गरम सूट और ओवरकोट पहने प्लेटफ़ार्म के पत्थर की पटिया पर एक तरफ़ टहल रहे थे। उनके गरम कपड़ों को भेद शरीर को छू लेने की ताब पहाड़ी ठण्डी हवा को न थी। वह केवल उनके चेहरे और सिर के बालों को ही सहला जाती। वायु की यह शीतलता, जो सैकड़ों मुसाफ़िरों के प्राण खींचे ले रही थी, सेठी को स्फूर्ति दे रही थी। इस शान्ति में वे स्वयं अपने ही भीतर समा जाने का प्रयत्न कर रहे थे। लारियों के ड्राइवर अपने शिकार मुसाफ़िरख़ाने में ढूँढ़ रहे थे। कारों के ड्राइवर, डरते-डरते वेटिंग रूम की जालियों से

अपने आसामियों को भाँप रहे थे। एक ड्राइवर ने अदब से सेठी को सलाम कर कहा—"हुजूर बहुत कम्फ़र्टेबल गाड़ी है।" सेठी ने उसकी बात का जवाब नहीं दिया। इस समय वह ठण्डी वायु का आनन्द ले रहे थे। उत्तर देकर अपनी शान्ति भंग करने की ज़रूरत नहीं थी। लारी में जगह न मिलने का सवाल उनके सामने न था। उन्हें गाड़ी में जगह ढूँढ़ने की ज़रूरत नहीं। गाड़ियाँ उनके पीछे-पीछे फिरती हैं। ड्राइवर दूर खड़ा होकर साहब के हुकुम की प्रतीक्षा करने लगा।

सेठी ने देखा, ज़नाना वेटिंग रूम का दरवाज़ा खुला। एक युवती काला कोट और सफ़ेद साड़ी पहने निकली। उसकी उँगली पकड़े एक प्रायः डेढ़-दो बरस का बालक साथ था। वे उस सूने प्लेटफ़ार्म के दूसरी ओर को चल दिये।

इस शान्ति में अचानक एक विचार सेठी के मन में उठा। बच्चे को उँगली थमा पूर्व की ओर मुख किये चली जाती हुई वह युवती उसे सफल जीवन का रूप जान पड़ी। अपना जीवन उसे जान पड़ता था निष्प्रयोजन, निरुद्देश्य सा; वायु में उड़ते हुए मेघ के एक अवारा टुकड़े की भाँति। और युवती का जीवन, एक सजल मेघ की भाँति, जो बरस कर फ़सल से भरे श्यामल खेत पर छा रहा हो। उस बालक की वह छोटी-छोटी मांसल टाँगें, उसकी वह लटपटी चाल, उसका वह माँ की उँगली से लटके-लटके चलना, माँ की संतुष्ट गम्भीर और स्थिर गतिः—वाणिज्य से लदी हुई नौका की भाँति जो स्थिर जल में गम्भीर चाल से चली जाती है।

सेठी लालटेन के खम्भे के सहारे पीठ टिका उस माँ-बच्चे, युवती-बालक की जोड़ी की ओर देखता रहा। स्टेशन की इमारत की दूरी तक जाकर युवती लौट पड़ी। लौटते समय उसने दाँयें

हाथ की उँगली छुड़ा बालक को बाँयें हाथ की उँगली थमाई और वह सेठी की ओर आने लगी। लता से लटके फल की तरह वह बालक अपना जीवन इस युवती से ले रहा था। प्रत्येक कुछ क़दम पर युवती का चेहरा और बालक की आकृति सेठी की दृष्टि में स्पष्ट होती जाती। युवती का गोरा रंग, पतला छरहरा बदन, स्वास्थ्य की झलक, बड़ी-बड़ी आँखें, बालक की छोटी-सी नाक, गोल-गोल आँखें, फूले हुए गाल, चेहरे पर ख़ून की ताज़गी, यह सब सेठी को ऐनक के शीशों की राह दिखाई दे रहा था। ताज़ी वायु की शीतलता से शान्ति लाभ करने की बात सेठी भूल गया।

कार के ड्राइवर ने मेम साहब को सलाम कर संक्षेप में कुछ पूछा। उसके बाद एक लारी ड्राइवर ने सलाम कर बात की।

सेठी कारोबारी आदमी है। वह समझ गया मेम साहब सस्ती और अच्छी सवारी की तलाश में हैं। लारी सात बजे से पहले सफ़र नहीं कर सकती परन्तु कार के लिये कोई बन्दिश नहीं। लारी के मुसाफ़िर प्रतीक्षा कर रहे हैं, क्योंकि उनके लिये सड़क बन्द है। कार के मुसाफ़िर प्रतीक्षा कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें जल्दी नहीं। एक ख़याल सेठी के मन में उठा। लालटेन के खम्भे का आसरा छोड़ सीधे खड़े हो उसने ड्राइवर की ओर देखा। दौड़कर ड्राइवर ने सामने हाज़िर हो दूसरी बेर सलाम किया। सेठी ने पूछा—"गाड़ी ठीक है।"

"हुज़ूर बिलकुल न्यू... आस्टिन सैलून"

"अच्छा"

"हुज़ूर और सवारी तो नहीं बैठेगी ?"

"नहीं एकदम जायगा...। तुमको कुछ पैसा बनता है...बैठा लो कोई एक सवारी।"

डाइवर ने और भी लम्बा सलाम किया। वेटिंग रूम से सेठी

का सामान निकला, तीन बड़े सूट केस और एक बड़ा होल्डऑल और छोटे मोटे अटैची केस। ड्राइवर ने तुरन्त फिर मेम साहब को सलाम बोला और फोकट की एक सवारी का सौदा कर लिया।

सेठी यह सब देख रहा था। मेम साहब का संक्षिप्त सा सामान भी निकला, केवल एक सूटकेस और होल्डऑल। बच्चे को ले वे भी सेठी के पीछे-पीछे कार की ओर चलीं। बजाय पीछे बैठने के सेठी ड्राइवर के बराबर आगे बैठ गया, मेम साहब और उनका बालक पीछे।

ठण्डी हवा को चीरती हुई कार दौड़ चली। सेठी अपनी पीठ के पीछे एक मौजूदगी अनुभव कर संतोष पा रहा था। पूरी गाड़ी का किराया भरने के बावजूद उसे अगली तंग सीट पर बैठना नागवार न गुज़रा। सामने तेज़ी से दौड़ते वृक्षों और सड़क किनारे के मकानों को देखकर मेम साहब का बालक अगली सीट को पकड़-पकड़ कर कूद रहा था। उसके इस उत्पात से कभी सेठी के सिर की टोपी हिल जाती, कभी वह उसकी बाँह में सिर मार देता। बालक की इस धृष्टता के कारण उसकी माँ को संकोच हो रहा था। उसने कई दफे बालक को शांत रहने के लिये कहा, मीठी धमकी दी परन्तु उससे सेठी और माँ दोनों को ही हँसी आ गई। बालक कूद कर अगली सीट पर पहुँच जाना चाहता था। पीछे घूम सेठी ने उसे उठा अपनी गोद में बैठा लिया। बालक के मांसल, पुष्ट कोमल देह के स्पर्श से उसके शरीर में एक अद्भुत स्फूर्ति अनुभव हुई। एक नवीन अनुभूति ने उसके मन को घेर लिया। उसका अब तक का बड़े यत्न और संघर्ष से सफल बनाया हुआ अपना जीवन सहसा असफल और निष्प्रयोजन-सा जान पड़ने लगा। वह बालक के मुख की

ओर देख रहा था और अपने जीवन में उसे एक बहुत बड़ा अभाव अनुभव हो रहा था।

मोटर के सामने दौड़ते हुए दृश्य में सेठी को अपने जीवन की कहानी सिनेमा के दृश्य की तरह दिखाई देने लगी। पिता के देहान्त के कारण एफ० ए० में उसका पढ़ाई छोड़ने के लिये मजबूर हो जाना, जीविका का कोई उपाय न पा उसका भटकना, ठेकेदार के यहाँ बोस रुपये माहवार पर उसका चौबीस घण्टे हड्डी तोड़ परिश्रम, उसका दूसरे ठेकेदारों का काम ठेके पर कराना और बड़ा ठेकेदार बन जाना, एक के बाद दूसरा ठेका। जिस रुपये की वजह से उसे दर-दर मारा-मारा फिरना पड़ा, उसी रुपये का हज़ारों लाखों की तादाद में उसके हाथों से आना-जाना। रेल के पुल के ठेके में एकमुश्त ढाई लाख का मुनाफ़ा......।

उसने जीवन में एक चीज़, रुपये को पहचाना। उसकी प्राप्ति में उसने दिन को दिन और रात को रात न समझा। आज वह लखपती है। अपनी कमाई के बल पर बड़ी से बड़ी कम्पनियों में उसके हिस्से हैं। जेब में पड़ी इम्पीरियल बैंक की चार अंगुल चौड़ी चेक-बुक पर कुछ अक्षर लिख दस्तख़त कर देने से वह क्या नहीं कर सकता? लेकिन इस बीच रुपये के अतिरिक्त उसने क्या पाया?...रुपये से क्या नहीं पाया जा सकता?... उसके वे सम्बन्धी जिन्हें वह पहचानता नहीं, पहचानने की जरूरत भी नहीं समझता, उसके नाम से अपना परिचय देते हैं। स्नेह से भरा हृदय ले उसकी ओर दौड़ते हैं। सम्मान की उसके लिये कमी नहीं। राजनैतिक और सामाजिक संस्थायें उसे अपना संरक्षक और सभापति बनाने के लिये व्याकुल हैं परन्तु इस सबसे उसे क्या मिलता है?

प्रेम और प्रणय के कितने ही अभिनय उसे घेर कर हुए।

उन लजीली और मुग्ध आँखों में उसे दिखाई दिया केवल उसके रुपये का लोभ! उसे फँसाने का यत्न! यह सब देखकर वह जीती मक्खी क्यों कर निगल जाता? उसे किसी ने आकर्षित नहीं किया। गुड़ की भेली पर मण्डराने वाली मक्खियों और ततइयों की तरह वह उन्हें हँका देता। उसका लक्ष्य है, रुपया!

रुपये की आज उसे कमी नहीं परन्तु फिर भी वह कमाता है। रुपये को बढ़ाना, बस यही उसके जीवन का उद्देश्य है। रुपया अब उसकी ओर यों बहता है जैसे बरसात में छोटे-मोटे नाली-नालों का पानी नदी में आ इकट्ठा होता है। उसके द्वारा तैयार की हुई व्यवस्था में सैकड़ों जगह हज़ारों आदमी परिश्रम करते हैं और रुपया पैदा करते हैं और वह रुपया व्यवस्था की नालियों से बहकर सेठी के हिसाब में जा पहुँचता है। उसका काम है, धन और रुपया बहाकर लाने के लिये नई नालियाँ तैयार करना।

अपने ख़र्च की उसे चिन्ता नहीं। उसे कोई शौक़ नहीं। अकेला आदमी ख़र्च किस चीज़ पर करे? उसका जाती ख़र्च कभी हज़ार बारह सौ माहवार से अधिक नहीं हुआ। सुख की ओर कभी उसका ध्यान ही नहीं गया। परन्तु आज अचानक ठण्डी हवा की फरफराहट से शान्त मस्तिष्क में इस एक नई अनुभूति...अभाव का अनुभव उसे हुआ।

वह बालक अपने जूतों को उसके बढ़िया कोट पर रख खड़ा हो मोटर के बरफ़ के समान ठण्डे काँच पर हाथ रख, अपना मुँह चिपका ख़ुशी से किलकिला रहा था। उसके पैरों से रौंदे जाने में सेठी को सुख अनुभव हो रहा था। उसकी आँखें आर्द्र हो गईं, उसके मुख का एक कोना भीतर को खिंच गया, वह एकटक दृष्टि से उस बालक की व्यस्तता को देखता रहा। अपने कानों के पास पीठ पीछे उसे अनुभव हो रही थी एक उपस्थिति

एक व्यग्र वात्सल्यमय उपस्थिति जो वृक्ष की छाया के समान व्यापक और वृक्ष को जन्म देनेवाले फूल के समान आकर्षक थी। सन्तान के सिर पर जो रक्षा और धैर्य का हाथ रखती है, पुरुष के हृदय में जो इच्छा का तीर मार देती है। जिसकी मुस्कराहट सतरङ्गा धनुष बना देती है। जिसमें प्रणय का कटाक्ष, रक्षा का आश्वासन, आशीर्वाद की छाया, वासना की झिलमिल सभी एक साथ शामिल हैं। इस प्रकार का एक चुम्बक उसे ऊपर की ओर, और गोद में पकड़े हुए बालक का आकर्षण नीचे की ओर खींच रहा था। एक नये ही अनुभव की अवस्था में वह कुछ भूला सा, कुछ खोया सा मग्न था। एक विद्युत सी उसके शरीर को विचलित किये हुए थी।

मोटर पहाड़ के ऊपर जा रही थी और ठण्डक बढ़ती जाती थी। बादल घने होते जा रहे थे। हवा पानी के बोझ से भारी थी। मोटर के काँच पर पानी जम-जमकर बूँदें बह रही थीं। काँच पर धुन्ध साफ़ करनेवाला यंत्र लगातार ड्राइवर के सामने के भाग को साफ़ कर रहा था और बालक उसे पकड़ लेने को उत्सुक। सेठी उसकी भरी हुई गोल बाहों को रोके हुए था। उन्हें छोड़ देने को उसकी तबीयत न चाहती थी। बालक ने उलटकर सेठी की ओर देखा, सेठी की नकटाई के नग जड़े पिन ने उसका ध्यान आकर्षित किया। वह उसे खींचने का यत्न करने लगा। पिन उतारकर सेठी ने उसके कोट पर लगा दिया। मोटर में पहरने की उसकी शरबती रङ्ग की अजीब सी बड़ी ऐनक बालक के मुँह पर पहुँच गई, जिसमें उसका आधा चेहरा छिप गया। उस ऐनक के शीशों में सेठी को प्रतिबिम्ब दिखाई दिया, पिछली सीट पर बैठी माँ होठों पर उँगली रख बालक को शांत रहने का संकेत कर रही है। सेठी ने पीछे घूम माँ की ओर देख सिफ़ारिश में

कहा—"इट इज़ आल राइट, कोई बात नहीं।" उसके होठों पर एक करुण मुस्कराहट थी। उससे माँ का हृदय पिघल गया।

ड्राइवर ने मोटर की चाल धीमी कर दी और मुआफ़ी माँगने के स्वर में कहा—"हुज़ूर ऊपर बड़े ज़ोर का पानी बरस रहा है, कोहरा बहुत ज़बरदस्त है।"

सेठी ने उत्तर दिया—"ओ, इट इज़ आल राइट।"

पहाड़ के ऊपरी भाग में बरसनेवाला पानी बह-बहकर सड़क के किनारे झरने बना रहा था। उस पानी को चीरती, फ़व्वारे की तरह हवा में पानी उड़ाती मोटर घूम-घूमकर ऊपर ही ऊपर चढ़ती जाती थी। साइन्स के चिराग़ को रगड़कर वश में किया हुआ यह मोटर का दैत्य पहाड़ की सख़्त चढ़ाई, बादलों के कोहरे और बौछारों की परवाह न कर ऊपर चढ़ता ही जा रहा था।

दो घण्टे तक लगातार वे 'अधमार्ग' के डाक बँगले में पहुँचे। मोटर घूमकर अहाते में पहुँची और ड्योढ़ी में आकर खड़ी हो गई। बँगले के अहाते के बाहर अनेक यात्री टीन और फूस की छतों के नीचे आधे भीगते बैठे थे। पहाड़ों में बोझा ढोनेवाले बैल और ख़च्चर जहाँ तहाँ पानी में भीगते भयातुर दृष्टि से मनुष्यों की ढीली-ढाली और उत्साहहीन चाल-ढाल को देख रहे थे। मनुष्य बादल और सरकारी हुकुम की प्रतीक्षा कर रहे थे और उनके पशु उनके निर्णय की। रात भर ज़ोर की बारिश के कारण ऊपर सड़क पर कई जगह पहाड़ गिरकर सड़क रुक गई थी। पशुओं को लेकर या मुसाफ़िरों को आगे जाने का हुकुम नहीं था।

ड्राइवर ने मोटर का दरवाज़ा खोला। सेठी उतरा और बालक सेठी की उँगली पकड़े हुए था। उसके पीछे मेम साहब उतरीं। डाक बँगले के चपरासी और ख़ानसामे ने कार को देख-

कर सलामें दीं। वर्दी पहने खानसामा ने निहायत अदब से नाश्ते के लिये पूछा। सेठी ने कहा—"हाँ!"

मेम साहब बच्चे के लिये पिटारी में दूध की बोतल लिये थीं। अपने लिये उन्हें खास ज़रूरत न थी। साठ रुपया महीना पानेवाली स्कूल मास्टरानी को डाक बँगले में नाश्ता करने की आदत नहीं होती। बरामदे की एक आराम कुर्सी पर बैठ मेम साहब ने सेठी की ओर देखे बिना बालक को आकर दूध पी लेने के लिये कहा।

सेठी ने मेम साहब की ओर देखे बिना कहा—"बल्लू गरम दूध पियेगा।"

नाश्ता मेज़ पर रखा जाने के बाद खानसामा ने मेमसाहब को सम्बोधन कर सूचना दी, मानो साहब, मेमसाहब और बच्चा एक ही हैं।

मेमसाहब को खानसामा का यह समझना कुछ अजीब परन्तु अस्वाभाविक नहीं जान पड़ा। सेठी की ओर देख नम्र और तकल्लुफ़ के स्वर से उन्होंने अँगरेज़ी में कहा—"मुझे तो अभी आवश्यकता नहीं।"

शिष्टता से सेठी ने आग्रह किया—"इतनी सर्दी में एक प्याला गरम चाय अच्छा ही है।"

नाश्ते के लिये वे भीतर बैठे। उस अकेले कमरे में आना-जाना केवल खानसामा का ही था। बाहर जगत की दृष्टि में वह पति-पत्नी और बालक का एक छोटा सा परिवार था और उस संसार का प्रतिनिधि या साक्षी था केवल वह खानसामा। उसके सामने व्यर्थ संकोच कर अपने आपको भयभीत और अपराधी प्रमाणित करना मेमसाहब को भी उचित न जँचा। बिलकुल निस्संकोच भाव से प्यालों में चाय उड़ेलना उन्होंने शुरू किया।

सेठी ने आमलेट का एक छोटा-सा टुकड़ा बल्लू के मुँह में दिया। वह मुँह भरकर उसे खाने लगा।

खानसामा मेमसाहब की पीठ पीछे आकर पूछता—"कुछ बिस-कुट, कुछ जाम, कुछ फ्रूट ?" और उत्तर देता था सेठी—"लाओ !"

जिन चीज़ों के आसानी से बिक जाने की आशा न थी वे सब खुलकर प्लेटों में, अधखुले डिब्बों की शक्ल में मेज़ पर आने लगीं। सेठी हँसता जाता था और बच्चे को एक-एक चीज़ चखाता जाता था। माँ बालक की खुशी को देखकर गद्गद हो रही थी। वह सेठी को मना करती जाती थी—"बस कीजिये, ज्यादा नहीं, अब इसे भूख नहीं।"

बालक की सहायता से संकोच दूरकर सेठी ने पूछा—"आप डलहौज़ी में ही रहती हैं ?"

"जी हाँ, मेरा नाम मिसेज़ मदन है। मि० मदन मिलिटरी अकाउएट्स के दफ़्तर में हैं। मैं स्कूल में पढ़ाती हूँ। बहिन को देखने अमृतसर गई थी।"

सेठी अपना क्या परिचय दे ? उसने केवल कहा—"अच्छी बात है।" अपने सम्बन्ध में कुछ कहने लायक़ बात ही उसकी समझ में न आई। उसे अपना जीवन नितान्त आधार रहित, रूप रहित जान पड़ रहा था।

"आप यहाँ डलहौज़ी में गरमियों के लिये जा रहे हैं ?"—मिसेज़ मदन ने पूछा।

"नहीं, ऐसे ही कारोबार के सिलसिले में कुछ दिन रहूँगा। डलहौज़ी जगह अच्छी है......बड़ी अच्छी जगह है, बहुत ही सुन्दर दृश्य है।"

"आप बाल बच्चों को साथ नहीं लाये"—आंतरिकता के स्वर में मिसेज़ मदन ने प्रश्न किया।

"नहीं...हैं नहीं...शादी मैंने नहीं की। मेरा नाम आर० एल० सेठी है। ठेकेदारी भी करता हूँ। अमृतसर का नया गिरिजा मैंने ही ठेके पर बनवाया है।"—दीवार की ओर देखते हुए चाय के प्याले में चम्मच चलाते हुए उसने कहा—"मैं ऐसे ही रहता हूँ।"

एक करुणा और दुःख का बोझ सेठी के शब्दों से मिसेज़ मदन के मन पर आ बैठा। वह सोचने लगी—"कितना भला और कितना अमीर आदमी है!"

बल्लू सेठी की चमड़े की चेन में बँधी सोने की घड़ी को मेज़ पर घसीट रहा था।

मिसेज़ मदन ने उँगली उठाकर कहा—"ना!" और फिर सेठी की ओर देख हँसकर कहा—"यह बड़ा ही शैतान है...।"

सेठी बार-बार सिर के बालों में उँगलियाँ चला रहा था। इसका कारण था शायद उसके विचारों की उलझन। बहुत कुछ प्राप्त करके भी उसे अपना जीवन निराधार जान पड़ता था, ठीक एक लँगड़े की तरह। सामने बैठी हुई मिसेज़ मदन का कोहनी मेज़ पर रख अपने बालक की ओर देखना, उसका स्वच्छ खिला हुआ चिकना चेहरा, बड़ी-बड़ी रसभरी आँखें, सिर पर से साड़ी का पल्ला खिसक जाने से बालों से भरा सिर, उसके लाल ओंठ, कोट के कालर से दिखाई देते लाकेट की चेन से बने तिकोन में गले के नीचे का भाग; यह सब उसे एक जीवन के प्रतीक जान पड़ रहे थे जो उसकी पहुँच के बाहर था।

मिसेज़ मदन की दृष्टि सेठी की आँखों की ओर गई। उन्होंने अनुभव किया कि सेठी की दृष्टि उसके शरीर को लपेटे ले रही है। एक सिहरन सी शरीर में अनुभव हुई परन्तु वह दुखदायक न थी, उससे उल्टा एक अधिकार का भाव मिसेज़ मदन के

व्यवहार में दिखाई दिया। दोनों हाथ मेज़ पर रख बिलकुल सीधे, चमकती आँखों से सेठी की ओर देख उन्होंने कहा—

"कितने ज़ोर की बारिश है! कैसे हम लोग पहुँचेंगे?"

"सेठी ने जेब से सोने का सिगरेट केस निकाला। सिगरेट मुँह में ले जला लिया और बेतक़ल्लुफ़ी से धुआँ छोड़ते हुए उसने कहा—"यह बारिश न भी रुके, आज हम न भी पहुँचें तो क्या हर्ज?"

दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में फाँसते हुए चिन्ता के स्वर में पर मुस्कराकर मिसेज़ मदन ने कहा—"जी, मुझे तो कल स्कूल में हाज़िर होना है हर्ज होगा, आप भी तो कारोबार से जा रहे हैं, आपका भी तो हर्ज होगा।"

"हाँ, जिस काम के लिये आया हूँ शायद वह न हो सके।"—बरामदे में खड़े खानसामा की तरफ़ देख उसने पुकारा—"देखो!"

खानसामा ने तुरंत तश्तरी में बिल हाज़िर किया। बिल की तरफ़ न देख मिसेज़ मदन ने कहा—"ड्राइवर को पूछो कब तक चलना होगा।"

बिल को अपनी ओर खींचते हुए सेठी ने कहा—"जब मैं स्कूल में पढ़ता था सदा यही चाहता था कि स्कूल में छुट्टी रहे या किसी बहाने से स्कूल न जाना पड़े परन्तु देखता हूँ, आपको स्कूल बहुत प्यारा है।"

मिसेज़ मदन ने उत्तर दिया—"आप शरारती लड़के रहे होंगे...आज भी आप शायद काम काज से बचने के लिए चाहते होंगे कि बारिश होती रहे और आप यहाँ बहाने से मज़े में सिगरेट पीते रहें?" और हँस दिया।

—"हाँ, चाहता तो ज़रूर हूँ।"

—"आपका दिल अपने बिज़नेस में नहीं लगता?"

—"कभी सोचा ही नहीं ! आज ऐसा मालूम होता है कि जीवन की गाड़ी को कीचड़ में खींचता रहा हूँ।"

ड्राइवर ने आकर ख़बर दी, अभी तक सड़क नहीं खुली। सेठी ने पुलिस स्टेशन पर फ़ोन कर पता लिया कि छः घण्टे से पहले सड़क के खुलने की कोई आशा नहीं।

इस ख़बर से मिसेज़ मदन को घबराते देख सेठी ने कहा—"आपके स्कूल वाले समझ सकते हैं कि सड़क बना लेना आपके हाथ में नहीं।"

मिसेज़ मदन का बिस्तर एक कमरे में खोल दिया गया और वे कमरे में चली गईं। बालक कभी उस कमरे में जाता कभी सेठी के पास। मिसेज़ मदन के उठकर चले जाने से सेठी को ऐसा जान पड़ा मानो उसके अधिक खाकर बीमार पड़ जाने के डर से उसके आगे से थाली छीन ली गई हो पर उसकी भूख अभी शेष थी। वह कभी आराम कुर्सी पर लेट आकाश में मँडराते बादलों की ओर देखता और कभी बरामदे में टहलने लगता, फिर बैठ जाता और फिर टहलने लगता। उसके हिसाबी दिमाग़ में उस दिन कल्पना ने घर कर लिया। उसकी आँखों के सामने उसके अपने जीवन का ही चित्र दिखाई दे रहा था, जिसमें वह रुपये के पीछे नहीं परन्तु किसी और ही वस्तु के पीछे दौड़ रहा था। उसे जान पड़ता था, सामने के दुर्गम पहाड़ पर वह चढ़ रहा है। आगे जाते एक नारी शरीर को पकड़ लेने के लिये। और जब वह हाथ फैला कर उसका पैर पकड़ लेना चाहता है, वह शरीर उचक कर दूसरी चट्टान पर पहुँच जाता है। वह शरीर था एक झीने से बादल में लिपटी हुई मिसेज़ मदन का।

टहलते-टहलते वह फिर आराम कुर्सी पर बैठ गया। उसी समय भीगी घास और वृक्षों पर सूर्य की नई धुली किरणें फैल

गईं। सूर्य के यों सहसा उघड़ आने से सेठी की आँखें चौंधिया गईं। उसे ख़याल आया, वह कितना असमर्थ है। वह उठकर मिसेज़ मदन के कमरे में भी नहीं जा सकता। वह शायद सोयी हुई हैं, शायद जग रही हैं, यदि वे दोनों एक साथ बैठते ?

जनाने जूते की आहट सुन सेठी ने घूमकर देखा, कोट की दोनों जेबों में हाथ डाले आकर मिसेज़ मदन ने कहा—"धूप निकल आई है और छः घण्टे भी हो गये अब तो हम चल सकते हैं ?......क्या बजा होगा ?"

घड़ी अब तक बल्लू के ही पास थी और उसका शीशा और सुइयाँ टूट चुकी थीं। समय जानने का उपाय था केवल ड्राइवर से पूछना। छः घण्टे ज़रूर बीत गये थे पर सड़क अभी ठीक न हो पाई थी और उस पर से मोटरों को गुज़रने की इजाज़त न मिल सकती थी।

खानसामा ने फिर आकर सलाम किया और पूछा—"लंच (दोपहर का खाना) के लिये कुछ इन्तज़ाम होगा ?"

"मेम साहब को पूछो।"—उत्तर दे बालक को उँगली पकड़ा सेठी धूप में निकल गया।

खानसामा अपने मन में क्या समझ रहा है, यह ख़याल कर मिसेज़ मदन को एक मधुर संकोच हो रहा था। परन्तु उस संकोच को प्रकट करने से सुबह के व्यवहार और इस समय के संकोच से स्थिति और भी ख़राब हो जाती। मिसेज़ मदन ने कहा—"जो कुछ भी हो......देर न लगे।"

सेठी चाहता था मिसेज़ मदन के समीप बैठना यदि मिसेज़ मदन को एतराज़ न हो। लंच खाने के लिये वे फिर साथ बैठे। बातचीत क्या हो ? सेठी ने कहा—"पहाड़ों में सड़क टूट जाने का झगड़ा अक्सर रहता है। पिछली दफ़े वह सुबह आया था

और तीन घण्टे में काम ख़त्म कर संध्या को लौट भी गया था। ......आप डलहौज़ी में कहाँ रहती हैं ?"

मिसेज़ मदन ने अपना पता दिया और पूछा—"आप कितने दिन ठहरेंगे, कहाँ ठहरेंगे ?" सेठी आया था सिर्फ़ काम से। एक दिन, दो दिन, तीन दिन ठहर सकता है। डलहौज़ी में चुड़ैलडण्डा पहाड़ी पर पल्टन के लिये नई इमारत बनाई जायगी, उसी के ठेके की बाबत वह डलहौज़ी जा रहा था। वह डलहौज़ी गया है—'हिलक्रेस्ट' होटल में ठहरा है, अब भी वहीं ठहर जायगा। .

बात ही बात में मिसेज़ मदन ने अपनी कहानी सुनाई। पति सौ रुपये माहवार पाता है। स्वयम् उसे भी स्कूल से साठ मिलता है। नौकरी के लिये मजबूरी है। उनका एक बँगला है जिसे पति की बीमारी के समय ४५०० रुपये में रहन रख दिया था। उसका किराया सीज़न में २००–२५० रुपये आता है परन्तु उसका उन्हें कोई फ़ायदा नहीं, उल्टे ५०–६० की किश्त उन्हें महाजन को और देनी पड़ती है।

सेठी ने सोचा ४५०० क्या है परन्तु वह क्या कर सकता है ? खाना खाते समय बल्लू के खेल को दोनों संतुष्ट आँखों से देख रहे थे। सेठी उसे खिलाते जाना चाहता था और मिसेज़ मदन उसे अधिक न खाने के लिये समझा रही थीं। उन्होंने बल्लू के सेठी की घड़ी तोड़ देने पर अफ़सोस भी प्रकट किया परन्तु सेठी ने सुनने से इन्कार कर दिया। खाना समाप्त हो ही गया। मिसेज़ मदन उठकर फिर भीतर जाना चाहती थीं, परन्तु सेठी ने साहस कर कहा—"क्या फिर सो जाइयेगा ?"

—"नहीं तो, पर किया क्या जाय ? क्या शाम तक हम लोग किसी हालत में नहीं पहुँच सकते ?"

—"कोई उम्मेद नहीं। घबराती आप क्यों हैं ? आप स्कूल कल न जायँगी एक दिन की तनख्वाह कट जायगी दो रुपये ! पर अगर मेरा काम न बना तो जानती हैं कितना नुक़सान होगा . ....१५ या २० हज़ार !"

सेठी हँस पड़ा। बिना चुप हुए ही उसने कहा—"आप अपना मकान महाजन से छुड़वा क्यों नहीं लेतीं ? फिर तो आपको नौकरी करने की ज़रूरत न रह जायगी ?"

—"पर कैसे; अभी तक हम मुश्किल से एक हज़ार भर पाये हैं।"

—"उसमें क्या है, आप छुड़ा लीजिये, रुपया हो जायगा। मुझे सूद नहीं चाहिये रुपये की भी ऐसी चिन्ता नहीं !"

मिसेज़ मदन की आँखें चमक उठीं, चेहरे पर लाली दौड़ गई। अपने आपको सम्भालने के लिये उन्होंने बल्लू को गोद में खींच लिया और उसके हाथ से घड़ी छीनकर कहा—"इसे आप रखिये नहीं तो यह इसे खो भी देगा।" बल्लू के मुँह बनाने पर उसने उँगली उठाकर कहा—"चुप चुप, मामाजी मारेंगे।" यह एक शब्द मुख से कह मिसेज़ मदन ने सेठी पर अपना अधिकार प्रकट कर दिया। अब उन्होंने अपने पिता के घर की बात सुनानी शुरू कर दी और बता दिया कि उसका नाम है उर्मिला।

साथ-साथ बैठे संध्या आ गई और फिर रात। रात में आकाश पर चाँद था। समीप खड़े चीड़ के वृक्षों से छन-छन कर चाँद की चाँदनी उन पर पड़ रही थी। बल्लू भीतर सो गया था। उर्मिला सोच रही थी, यों एकान्त रात्रि में उन दोनों का एक साथ होना और चाँद का यों चमकना ! भय और आतुरता की चिनगारियाँ उसके मस्तिष्क और त्वचा पर चिटक जातीं।

बाहर ठण्ड थी और ठण्डी हवा। भीतर जाने के लिये कमरे

थे परन्तु खानसामा ने अपनी बुद्धि के अनुसार दोनों का सामान एक ही समझ कर दोनों बिस्तर एक ही कमरे में लगा दिये थे। ऐसा न करने के लिये उसे कहा भी न गया था परन्तु भीतर जा एक कमरे में समीप के पलँगों पर सो जाने की बात सोच मिसेज़ मदन की आँख बन्द हो जातीं। वह सोचती; क्या कभी ऐसा हो सकता है ?

काफ़ी रात बीत गई। सेठी ने कहा—"आपको सर्दी में कष्ट होगा, आप जाकर सोइये ?"

—"और आप ?"

—"मुझे नींद नहीं आ रही।"

मिसेज़ मदन जानती थीं कि सेठी बाहर ही रात बिता देगा और उसी के कारण .....? ओफ़ कितना सज्जन आदमी है।

अपने रिश्ते में एक खूब पढ़ी-लिखी लड़की की बात बताकर उसने कहा—"आप शादी कर लें।"

सेठी ने कहा—"जब आयु के बयालीस बरस ऐसे ही बीत गये तो शेष भी बीत हो जायँगे। और फिर शादी, वह एक क़िस्म से दाँव लगाना है, सीधा पड़ सकता है पर उलटा भी!"

सेठी ने फिर एक वक़्त उर्मिला को भीतर जाकर सो जाने के लिये कहा। उर्मिला ने उत्तर दिया—"उसे चाँदनी बहुत अच्छी मालूम हो रही है, सर्दी भी खास मालूम नहीं होती। कोई भी भीतर नहीं गया। दोनों वहीं बैठे रहे। कभी सेठी कुछ कहता और उर्मिला सुनती, कभी उर्मिला कहती और सेठी सुनता।

नवमी का चाँद पहाड़ की ओट हो गया, समय जानने का कोई उपाय न था परन्तु आधी से अधिक रात बीत चुकी थी। जाड़े से दोनों काँप रहे थे। उर्मिला के लिये यह सह्य न था कि

उसकी वजह से सेठी जाड़े में इस तरह मरे। हो सकता है वह बीमार हो हो जाय? खड़ी होकर उसने कहा—"आइये भीतर चलें, क्या घरों में लोग एक कमरे में नहीं सोते?" वे दोनों भीतर जा रहे थे, उस समय सेठी ने उर्मिला की पीठ पर हाथ रख दिया। अपने-अपने बिस्तर में लिपट कर वे दोनों लेट गये।

× × ×

सुबह सड़क खुल गई थी परन्तु चाय पी लेने के बाद ही चलने का निश्चय हुआ। सेठी ने पूछा—"रात खूब नींद आई?" और हँस दिया।

उर्मिला ने मुस्कराकर कहा—"आपको तो ज़रूर आई होगी?"

दोनों समझ गये कि नींद किसी को भी नहीं आई परन्तु उनींदी रात काट देने पर भी दोनों के शरीर में काफ़ी स्फूर्ति थी।

सेठी ने कहा—"तबीयत नहीं होती इस बँगले को छोड़कर जाने की?"

उर्मिला ने करुण दृष्टि से सेठी की ओर देखा और आँखें झुका लीं। शब्द न थे। उसने पति पाया था परन्तु ऐसी उदारता, संयम और अनुराग न देखा था। उसका रोम रोम पुकारना चाहता था—तुम बड़े हो, महान् हो! परन्तु जिह्वा बन्द थी। स्त्री की हमेशा हार है। जब उस पर आक्रमण होता है तब भी और जब उसे पनाह दी जाती है तब भी।

चलने से पहले सेठी ने कहा—"अगर तुम्हें एतराज़ न हो, मैं इस बँगले से तुम्हारा एक फ़ोटो ले लेना चाहता हूँ।"

एतराज़! उर्मिला को एतराज़ क्या हो सकता था? उसने केवल कृतज्ञता से सेठी की ओर देख भर लिया। उर्मिला गर्दन एक ओर झुकाकर खम्भे से टिककर खड़ी हो गई। सेठी ने कई फोटो खींचे।

× × ×

दो मास केवल साठ दिन होते हैं परन्तु इस बीच कितना परिवर्तन हो गया। मदन मिलिटरी अकाउण्टेण्ट के दफ़्तर से एक सौ रुपये की नौकरी छोड़ 'सेठी एण्ड कम्पनी' में अकाउण्टेण्ट हो गया। उसे तीन सौ रुपया माहवार मिलने लगा। उर्मिला साठ रुपये की मास्टरनी नहीं रही। वह अपने छोटे से बँगले में बड़ी छतरी के नीचे गुलाबी धूप में बैठ बल्लू के लिये स्वेटर बुनती है और गोंडे ज़िले की काले रंग की आया बल्लू को सड़क पर टहलाने ले जाती है।

सेठी का डलहौज़ी बार-बार आना जरूरी है; क्योंकि फ़ौजी बारकें बनाने का ठेका उसके पास है। परन्तु उर्मिला के मन में दुविधा है। सेठी उसकी रिस्ते की बहन से शादी करने के लिये तैयार क्यों नहीं होता ?

सब समझ कर भी वह स्वीकार करना नहीं चाहती। पिछली दफ़े सेठी ने स्पष्ट कह दिया था—"पेट भर कर कद्दू चबाने से संतरे की सुगन्धि पा जाना ही अच्छा है। स्वेटर बुनते-बुनते उसे ख़याल आया कि वह खुद ही संतरा है। सेठी के व्यवहार एक-एक कर उसकी आँखों के सामने आने लगे। सेठी को उसका अपने बालों में उँगलियाँ चलाना बहुत अच्छा लगता है। बिना कुछ कहे वह उसे सामने बिठा रखना चाहता है। सेठी जो कपड़ा ला दे वह उसे सेठी के सामने पहनना ही चाहिये। सेठी की किसी बात को अस्वीकार कर देना उसके लिये सम्भव नहीं। जब सेठी चाहे उसे बिना बाँह और बिना पीठ का ब्लाउज़ पहनना होगा। बेशक उर्मिला को वही कुछ पहनने, उसी तरह रहने से संतोष होता, जैसे सेठी की इच्छा होती। परन्तु सका अपना अस्तित्व अपना व्यक्तित्व कहाँ रह गया ?

और फिर पिछले बुद्ध की रात को जब वह आधी रात तक

बँगले में ही रहा, उसने क्या बात कही ?......उसने उसे हाथ नहीं लगाया, छुआ नहीं, दूर ही बैठा रहा परन्तु फिर भी उसमें शेष रह ही क्या जाता ? उसने कहा था—'मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, मेरे प्रेम का कोई उद्देश्य नहीं, तुम मुझे जान पड़ती हो हृदय की चाह जैसी ! तुम्हें देखना चाहता हूँ...अपना समझना चाहता हूँ ?

उर्मिला से यह न हो सका। वह रोने लगी थी। उस समय वह माफ करो—कहकर चुप-चाप चला गया।

आज सिलाइयों की बुनती में दृष्टि गड़ाये बिजली की तेज़ रोशनी में उस रात का सब दृश्य उसकी आँखों के सामने फिर गया। पर क्या उस रात उसने ठीक किया ?

जिस आदमी ने बिना अहसान जताये अपने जीवन भर के परिश्रम की कमाई उसे भेंट कर दी, कभी कुछ अपने लिये चाहा नहीं, उसकी बात चाहे जो भी हो...उसे निराश करना... ।

सेठी ने कह दिया था, वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति बल्लू को दे देगा परन्तु बल्लू का उस सम्पत्ति में कोई हिस्सेदार नहीं आ जाना चाहिये !...स्पष्ट शब्दों में इसका अर्थ था उर्मिला की कोख पर ताला लगा कर सेठी ने उस पर अपना अधिकार कर लिया, वह उसे छुये या न छुये ! बल्लू भी उसी का है, मदन भी उसी का है और वह उर्मिला सबसे पहिले उसकी ही है।

सेठी कितना संयमी, कितना उदार, कितना महान हृदय है ?...सब कुछ उसने किस तरह अर्पण कर दिया ?...और उसने तो कुछ भी सेठी को अर्पण किया नहीं...अर्पण करने का मौका ही नहीं आया। सेठी ने सब चीजों पर स्वप्न में ही अधिकार कर लिया और कितनी सरलता से ? मानों सब चीज़ों की एक चाबी थी, जिसे उठाकर उसने अपनी जेब में रख लिया। उस जाल से बाहर जाने का कोई रास्ता न उर्मिला के लिये, न

बल्लू के लिये और न मदन के लिये ही है। मानो वे सब बिक गये हैं।

...और यदि सेठी कल फिर आये और उदास मुख से अपनी उसी बात को दोहराये ? एक तरफ़ बैठकर कहे—"तुम्हें चाहता हूँ..." तो क्या अब भी वह न कर सकेगी ? एक बेर न कर वह अपराधी की तरह पछताई।

उसने सोचा, उसमें बात ही क्या है ? फिर भी वह एक दफे इनकार कर देना चाहती थी। परन्तु इनकार का हक़ है उसे ? वह हक़ जो सबको होता है, उसे न था उसकी अपनी आत्मा के सम्मुख ही न था।......वेश्याओं का जीवन और क्या होता है...उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

फिर ख्याल आया दो ही महीने पहिले, जब केवल छोटे-छोटे दो कमरे थे, उर्मिला थक कर स्कूल से लौटती और बच्चे को गोद में ले मूर्ख नौकर के साथ सिर खपाती थी। अनेक जरूरतें पूरी न हो पाती थीं। परन्तु उस समय वह 'हाँ' या 'ना' कह सकती थी। स्वयं अपनी इच्छा से वह चाहे जो भी करती...सिगरेट कम्पनी वाला वह हँसमुख बाबू कितना सज्जन था ? परन्तु उसने सदा उसे इनकार ही किया !

फिर ख़्याल आया—हो सकता है आज सेठी आये। उसने आँसू भरी आँखें उठा फाटक की ओर देखा...उनमें आतुरता नहीं कातरता थी...।

जिन लोगों ने एम. ए. की परीक्षा दी है वे ही इस राज़ को जानते हैं। किसी को धमकाना हो, गम्भीरता से कह दीजिये—इस बरस एम. ए. की परीक्षा देने जा रहे हैं। एम. ए. की परीक्षा की तैयारी में सब मुआफ़ है। किसी की शादी-ग़मी में, रोग-संताप में सम्मिलित होने के लिये आपको बाध्य नहीं किया जा सकता। एम. ए. की परीक्षा है, मज़ाक नहीं। और जो जानते हैं, कनखियों से देखकर रह जाते हैं। रहस्य के बने रहने में ही कुशल है। उपन्यास लेकर बैठ जाइये! क्या मजाल किसी की जो समझे कि कोई मामूली पुस्तक है। दिन में सोइये—कौन उठा सकता है? एम. ए. की परीक्षा जो देनी है। घण्टों अवारा फिरिये, समझा जायगा, इतनी कड़ी पढ़ाई के लिये मस्तिष्क को ताज़ा करने की भी तो ज़रूरत है।

पिताजी ने कहा—"परीक्षा की तैयारी यहाँ गरमी में ठीक नहीं हो सकेगी। तुम्हारी माँ का स्वास्थ्य ठीक नहीं। रक्षा बहिन के सिरदरद में कुछ आराम होगा। बच्चों की सेहत भी कुछ सुधरेगी, पहली जून से तुम सब मंसूरी चले जाओ।"

पहाड़ पर गरमी के दिन बिताने के विचार से जो उमंग मन में उठी, वह मंसूरी आकर ध्वंस हो गई। सुबह शाम घर

भर को ले सैर कराना ! माँ अपने पर्याप्त शरीर को प्रौढ़ सभ्य गृहणी की मर्यादा के अनुसार साड़ी के ऊपर चादर से ढके, संयत भाव से चार अंगुल परिमाण का आर्यसमाजी घूँघट निकाले, दोनों कदमों पर बोझ तौल-तौल, दायें हाथ से चादर के आँचल को लहराती चलतीं। बगीचे में दाना कुरेदकर बच्चों को खिलानेवाली मुर्गी की भाँति उनके आगे-पीछे, दायें-बायें, रक्षा बहिन, छोटी बहिन सत्या, प्रद्युम्न और छोटा काका गोल बाँधकर चलते। सर्कस के नायक सूत्रधार की हैसियत से चलना पड़ता था अपने को।

'सूत्रधार' का यह पद कुछ प्रीतिकर नहीं जान पड़ता था। स्त्रियों और बच्चों के इस गोल को जनता के सम्मुख हाँक कर ले चलने में कुछ झिझक सी .....एक तरह की खीझ सी अनुभव होती। मैं कुछ हटकर दूर-दूर चलता मानों इन लोगों के साथ नहीं हूँ। दर असल 'कम्पनी' भर में माँ और छोटे काका को छोड़ सभी असंतुष्ट थे। अपनी फलती-फूलती 'सृष्टि' को ले संसार की आँखों के सम्मुख चलने में माँ को जरूर गौरव अनुभव होता। छोटा काका सिलमे की टोपी लगा अपने सिर से बड़ी बेंत हाथ में ले पहाड़ी कुली के कंधे पर अगुआ बनकर चलता। वह भी बेशक प्रसन्न था।

प्रद्युम्न की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती। वह आकाश की ओर मुख उठा, देखता कुछ खाता चलता। माँ क्षण-क्षण कहतीं—बच के, देख...सामने देख, रिक्षा आ रही है। फर्लांग भर दूर से ही घोड़ा या रिक्षा दिखाई देने पर ही माँ सभी को आशंका की चेतावनी देने लगतीं। यह प्रद्युम्न के उदीयमान यौवन का अपमान नहीं तो क्या था ? वह अपने आपको लड़का नहीं समझता। आठवीं जमात में पढ़ता है, स्काउट है, उमर के तेरहवें बरस में है।

सत्या को माँ बराबर सिर ढकने के लिये कहतीं। सिर में ही हवा न लगेगी तो दिमाग़ ताज़ा कैसे होगा ? यह माँ को न जाने क्यों समझ नहीं आता। सत्या नवीं श्रेणी में जो स्वास्थ्य-रक्षा पढ़ती है, वह माँ ने तो पढ़ी नहीं।

मुझे और रक्षा बहिन को माँ कुछ नहीं कहतीं। परन्तु रक्षा को यह सैर बिलकुल नीरस जान पड़ती है। माँ बूढ़ी है, सत्या बच्चा है, वह किससे बात करे ? खास कर छोटे काके के बिल-कुल समीप होने से उसे लज्जा मालूम होती है...लोग क्या कहते होंगे मन में ?

भीतर-ही-भीतर इतना असंतोष होने पर भी प्रकट विद्रोह जो नहीं हो सका, उसका कारण था—लाचारी। हम लोग मंसूरी में नये थे, परिचय नहीं, जान पहचान नहीं, करते क्या ?

हमारी कम्पनी सुबह की पैट्रोल से लौट रही थी। उस समय कैमलबैक रोड और लाइब्रेरी बाजार के जोड़ पर क्या देखता हूँ:—सर्दार तेज़ क़दमों से चला जा रहा है। सहसा चार आँखें हुईं, चार हाथ हुए अर्थात् पंजाबी डबल शेकहैण्ड हुआ। इससे भी मन न भरा तो गले मिलना हुआ। ज्यों-त्यों अगले दिन से कम्पनी का चार्ज मैंने अपने कंधों से खिसका दिया।

सर्दार सहपाठी नहीं, 'पक्का' दोस्त है। हम अलग-अलग कॉलेजों में पढ़ते थे परन्तु १६२.. ... के यूनिवर्सिटी-टूर में हम दोनों अभिन्न हृदय हो गये। दोनों का स्वभाव और मज़ाक मिलता था। मंसूरी में मिलने पर बम्बई और मद्रास के हमारे पुराने मज़ाक और परिभाषायें पुनः जागृत् हो उठीं। दो मास की यूनिवर्सिटी यात्रा में जो सांसारिक अभिज्ञता हमने प्राप्त की थी उसके आधार पर हमारा ज्ञान और पारिभाषिक भाषा इतनी

परिष्कृत हो उठी कि वह सर्वसाधारण के लिये दुर्गम ही नहीं, अगम बन गई।

अजन्ता की गुफाओं और दक्षिण के मन्दिरों की निर्माण कला से अधिक अनुशीलन हमने किया था जीवन के उस पहलू का जो पर्दे की कुप्रथा के कारण पंजाब में प्रायः छिपा रहता है। लाहौर में समाज-सुधार की अग्रिणी कुछ युवतियाँ बिना पर्दे के जहाँ-तहाँ सभा-समाज मे दिखाई देती हैं ज़रूर परन्तु उनकी ओर देखने से दूसरों के परिहास का पात्र बनना पड़ता है। दक्षिण में यह बात नहीं। स्त्रियों के स्वच्छन्द उदार प्रवाह को देख हम लोगों के मुरझाये हृदय सहसा पनप उठे। आँख भर-भर देखा और फिर अच्छे बुरे की परख भी पैदा हुई। नये विज्ञान के साथ नई परिभाषा का भी आविष्कार हुआ। मंसूरी में सुअवसर पा उसी को हम विकसित करने लगे।

× × ×

जिस वस्तु के विरुद्ध वर्जना की जाती है, प्रवृत्ति उस ओर वेग से जाती है और दुर्दान्त वेग से जाती है। अदन के बाग में अंगूर छोड़ गेहूँ के नीरस दाने चबाने की इच्छा हव्वा को कभी न होती यदि उसके लिये खास मनाही न कर दी जाती।

हम पंजाबी नौजवानों के लिये स्त्री वर्जित फल है, इसलिये उसके प्रति अपरिमित कौतूहल मन को चंचल कर देता है। पाखण्ड की बात जाने दो। संसार भर की कविता का सार है:—पुरुष का स्त्री के लिये और स्त्री का पुरुष के लिये 'हाय-हाय' करना। जिसकी हाय-हाय जितनी चुटीली होती है, उसे हम उतना ही ऊँचा आसन देते हैं। कालिदास, भवभूति, बिहारी, शेक्सपियर, दाँते इन सबकी महत्ता और किस बात में है? आचार शास्त्र स्त्री और पुरुष को दूर-दूर रखने की व्यवस्था करता है, यह क्यों? 'आग'

को चिमटे से सम्भालने की बात न बता उससे परे हट जाने को कहता है। परन्तु 'आग' के बिना तो निर्वाह हो नहीं सकता। उसे तो एक दिन हथियाना ही पड़ेगा; उस दिन हाथ क्यों न जलेगा ?

× × ×

मंसूरी में किस का डर था ? अवसर भी खूब अच्छा था। सभी प्रान्तों की रमणियाँ, देसी और विलायती बहुतायत से देखने को मिलतीं। सर्दार को यूरोपियन औरतों से न जाने क्यों एक चिढ़ है; खासकर उनकी ऊँची घँघरिया से ? ख़याल होता है—मुख पर नई उगती ऊन से मुक्ति लाभकर, सफ़ाचट गालों के स्वर्गीय आनन्द—क्योंकि पुराणों में ब्रह्मा को छोड़ सभी देवता सफ़ाचट माने गये हैं—को प्राप्त करने की आशा वह कभी कर नहीं सकता। और बाल-जंजाल से घिरे उसके चेहरे पर हाथ फेर कर कोई यूरोपियन रमणी उसे कभी 'माई-डार्लिङ्ग !' 'माई जुएल !' कहेगी, इसकी आशा उसे स्वप्न में भी नहीं हो सकती। जान पड़ता है, इसीलिये देशाभिमान की ओट ले वह यूरोपियन कोमलांगियों को 'छी' में उड़ा देना चाहता है।

हाँ ! मंसूरी में हम क्या करते थे ? दिन भर युवति-चर्चा ! परन्तु निष्काम और अनासक्त रूप से ! इस काम के लिये सबसे पहली बात थी, शिकारी की गृद्ध-दृष्टि उत्पन्न करना। कितना भी फासला हो, वस्तु को पहचानकर उसका भाव जाँचना। चुस्त और सधी हुई नजर खूब दूर से ही शिकार को चुग लेती है। इसे अँग्रेजी में कहा जायगा स्पॉट करना। उस समय साथी को सावधान करने के लिये संकेत शब्द हैं—सीधे-Eyes front ! दाँयें देख-बायें देख—Eyes left-Eyes right ! मोटा काम है वर्ग विभाजन का। तीस वर्ष से ऊपर जिनको आयु हो चुकी हो, उनकी ओर ध्यान देना व्यर्थ है। तेरह से नीचे भी यही बात है।

यों समझिये, इनमें पहली हो गई अम्मा और दूसरी बच्चा !

रूप का जो प्रभाव पड़ता है, उसमें वस्त्र परिधान तथा संस्कृति का कितना स्थान रहता है, इसे बारीकी से देखना चाहिए। बुद्धिमानों का वचन है:—एक हुसुन हुसुन, सौ हुसुन कपड़ा। हज़ार हुसुन गहना, लाख हुसुन नख़रा !

आधुनिक शिक्षितों में से जो लोग ब्लाउज़ साड़ी और चप्पल पहनती हैं, अधिक भड़क जिनके व्यवहार में नहीं, सौम्यता की भी छाप जिनके व्यवहार पर लगी हो, उनकी परिभाषा है—सुसंस्कृत यानी पानीदार (Sober) ! केश-विन्यास आदि में यदि सौम्यता न होकर हाव-भाव का तीखापन झलके तो उसे कहा जायगा—खंजर (Killer)। यदि नवीन ढंग की पेशावरी काट की लाहौरी पोशाक अर्थात् चौड़े पौंचे की सिलवार, नीचा कमीज़, ऊँची एड़ी का या तिलई जूता और बारीक दुपट्टा आधे सिर पर रहे तो यह हुई—(गुड्डी) ! गँवईगाँव की लड़की हुई—'फूहड़'।

बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो देखने से ही सम्बन्ध रखती हैं। वह युवती जो चंचल हो, अपनी मोहकशक्ति की परीक्षा के लिये तिलमिला रही हो, उसे कहा जाता है—'पटाखा' (Dash) ...पटाख़ा भी नमूनों का हो सकता है। प्रभाव किस बात से होता है यह भी देखना चाहिये, जैसे चुलबुला पटाख़ा (Eye stroke) या नमकीन पटाख़ा (Colour stroke !)

साहित्य-दर्पण में जिसे अज्ञातयौवना कहा गया है, उसे कहना चाहिए—'अजान कातिल', विस्मृता को—'भटकी हुई'।

इसके पश्चात् था काम नम्बर देने का। समझ लीजिये पूर्णांक हैं १००। नम्बर अधिकारी की योग्यतानुसार दिये जाते थे। नम्बर देना अपनी रुचि (Teste) पर निर्भर है। यों तो रंग रूप, चाल ढाल, हाव-भाव सभी बातों के नम्बर अलग-

अलग होने चाहिये परन्तु कोई परीक्षक गोरे रंग को और कोई नख-शिख को अधिक महत्व देगा। कोई और कुछ न देख केवल आँखों के आकार-प्रकार पर ही अधिक नम्बर दे सकता है और कोई किसी दूसरी बात पर।

सर्दार जिस उत्साह से कटीली और रसीली आँखों का वर्णन करता था, वह मैं कभी समझ न सका। एक दफ़े रोएँ झड़ जाने से फूल गई आँखों की पलकें दिखाकर मैंने सर्दार से पूछा—"यह आँखें कटीली हैं या रसीली ?" पसली में एक घूँसा मार उसने कहा—"गधा"! इसलिये समझ लिया आँखों का विषय कठिन है।

× × ×

आखिर हुआ यहः—सर्दार के मित्र भगूतर के सहयोग से 'ठर्क-विद्या' की पारभाषा में आशातीत उन्नति होने लगी। लाइब्रेरी बाज़ार, माल, कैमल्स-बैक, हैपीवैली, सनीव्यू, लंढौर बाज़ार यही सब हमारी प्रयोगशालायें थीं।

एक दिन दुपहर तक बरसकर तीसरे पहर खुल गया। हम लोग हैपीवैली में नीचे एक बेंच पर बैठे ऊपर की चौतरफ़ा सड़कों पर दूर की चाँदमारी (Long range shooting) कर रहे थे। सहसा सर्दार ने कहा—"बाएँ घूम !" हमने बाईं तरफ़ देखा—

देवदारों के नीचे एक पगडण्डी से तीन नवयुवतियाँ नीचे आ रही थीं। उनमें से एक मोतिया रंग की साड़ी पहिरे थी; शेष दो में से एक हल्के मूंगिया रंग की और तीसरी टसरी।

सर्दार ने छूटते ही कहा—"८०/१०० मोतिया के।" भगूतर ने कहा—"मूँगिया के ६०/१००।" मैंने कहा—"टसरी के ८०/१००···भूल-चूक लेना-देना।" लड़कियों के कुछ और समीप आ जाने पर सर्दार ने कहा—"नहीं, मोतिया के ७५/१००।" भगूतर ने कहा—"पाँच बढ़ाये·········६५/१००।"

मैं हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। सर्दार और कुछ कहना ही चाहता था कि मैंने कहा—"चुप वह मेरी बहन है, रत्ता!" परन्तु सर्दार ने सुना नहीं। उसने फिर कहा—"नहीं ८०।१०० ही ठीक है।" मैंने कुछ बिगड़कर कहा—"होश कर!......कह रहा हूँ वह मेरी बहिन है।"

बेपरवाही से सर्दार ने हँस दिया—"सभी लड़कियाँ तो किसी न किसी की बहिन होती हैं......।" मुझे ऐसा जान पड़ा, अपने परिवार के सम्मान के लिये जूझ मरना होगा।

घड़ों पानी पड़ गया। वे दोनों भी लज्जित हो चुप रह गये। अँधेरा होते देख एक-एक कर वे लोग चले गये परन्तु मैं देर तक बैठा सोचता रहा—"सभी किसी न किसी की बहिन होती हैं..."

....या सांई सच्चे !

८

चन्ना पंजों के बल, हलके क़दमों से दुड़की-चाल चली जा रही थी। उसकी दोनों चिकनी, गोल, भरी हुई बाहें कुहनियों से कुछ ऊपर उठी हुई, चाल की ताल पर हिल रही थीं। गर्दन उसकी पतली पर सीधी बगले की सी और सिर पर पानी से भरा घड़ा यों टिका हुआ कि शरीर का ही भाग हो। पानी के घड़े की बात क्या ? घी की बड़ी चाटी सिरपर साधे, एक दफ़े भी हाथ से छुए बिना वह आठ मील नारोवाल के बाज़ार तक चली जाती।

मँजे हुए ताँबे के से रंग की गर्दन में चाँदी की मोटी हँसली उसके नीले कुर्ते पर बहार दे रही थी। उसके शरीर की सजीव स्फूर्ति की ही भाँति उसका जोबन भी आकार में छोटा परन्तु अपनी तीव्रता से कुर्ते की परवाह न कर उभरा चला आ रहा था। कमर से लिपटा, सफ़ेद धारीदार काला तहमत चाल की गति से फड़फड़ाता जा रहा था। उसकी छोटी काली चुनरी उसकी गर्दन के चारों ओर बलखाये कंधों पर सिमटी, उसकी दृढ़ गुँथी हुई बेनी के साथ लिपटी पीठ पर लटक रही थी।

चन्ना ने देखा—मन्दा अपनी नीली घोड़ी पर चला आ रहा है। उसके चेहरे पर चमक आ गई। बड़ी-बड़ी फैली हुई आँखों की पलकें ज़रा झुक गईं। उसने सोचा, कुछ तो कहेगा ज़रूर ! सच-

मुच ही उसे देख मम्दा ने लगाम खींच घोड़ी की गर्दन दोहरी कर दी। आदमी भला था। दूर से ही पगडण्डी चन्ना के लिये छोड़ घोड़ी को झाड़ियों में कर लिया। पलकें उसकी भी झुक गईं। चन्ना के पास आने पर धीमे स्वर में पूछा—"पीलू लाऊँगा, खाओगी?"

मम्दे के स्वर में जो दर्द था वह चन्ना के हृदय को छू गया। परन्तु चाल में अन्तर आने दिये बिना ही धीमे स्वर में उसने उत्तर दिया—"क्या करूँगी!" जैसे पीलू खाने के शौक की उसकी उम्र अब नहीं रही। उसी तेज़ चाल से चलते हुये चन्ना की आँखों के सामने मम्दा के चेहरे की बेबसी दिखाई देने लगी। अभी उस दिन जाने कितनी दूर से पके-पके, रस भरे डेले उसने लाकर दिये थे। उस दिन भी तो उसने निरुत्साह से इन-कार कर दिया था—"क्या करूँगी?"

और तीन साल पहले?...जब मम्दा कभी इन लोगों की बस्ती के समीप से गुज़र चनाव के कछार में अपना माल (पशु) देखने जाता, चन्ना उससे डेले और पीलू लाने के लिने झगड़ा करती थी। तब मम्दा मुँह चिढ़ाकर कहता था—"बड़ी तू शेरकोट की नवाबज़ादी है न?...मैं तेरा नौकर हूँ क्या?...तेरे बाप के पास भी तो घोड़ी है। चढ़के चली जा और डेले और पीलू खाले!" तब चन्ना अँगूठा दिखाकर कहती—"ए हे, बड़ा जवान बनता है! मैं तुझसे बड़ी खाल पर घोड़ी कुदा सकती हूँ। बड़ा रेत में घोड़ी दौड़ाकर दिखाता है। हमारी कुम्मैत घोड़ी जुते हुए खेत में चौका चलती है।"

चन्ना के इस ताने के उत्तर में कानों तक तराशे हुए अपने छल्ते (पटे) छिटकाकर मम्दा उत्तर देता—"बड़ी नवाबज़ादी है तू! हमारी बस्ती की लड़कियाँ तो दो-दो हँसलियाँ पहनती हैं और झंग की कामदार जूतियाँ।"

इधर यह बात हो गई कि मम्दा चन्ना को एक आँख भर देख पाने के लिये चार मील का चक्कर दे उसकी बस्ती के पास से होकर चनाव के कछार में अपने पशु देखने जाता। चन्ना भी यह सोचकर कि कल मम्दा इस राह दिखाई नहीं दिया, आज भी क्या नहीं आयेगा ? पानी का फालतू घड़ा लेने चली जाती। बहुत दिन से समय देखकर एक बात वह उससे कहना चाहती थी और जब मम्दा दिखाई देता, तो मुख से शब्द न निकलते, चेहरे पर सुर्खी फैल जाती और पलकें झुक जातीं।

चन्ना के हृदय को चिन्ता खाये जा रही थी। पहले उसका बाप रात में प्रायः मम्दा की तारीफ़ किया करता था कि लड़का स्वरूप और जवान है। उसके बाप कादिर के यहाँ जितना माल है, नीलीबार में किसके यहाँ होगा ? मिंटगुमरी में फिरंगियों की छावनी में उसके यहाँ के बछड़े ख़रीदे जाते हैं। हुनर में उसका लोहा लायलपुर से मुल्तान तक माना जाता है। सौ मील से वह जानवर की गंध लेता है। उसके हाथ लगा माल फिरंगी की फौज़ तक वापिस नहीं फेर सकती। जवानी में उसने वो-वो धावे किये हैं कि रहे नाम सांई का ! लड़के की माँ नहीं तो क्या, चाचियें तो हैं।

परन्तु अब इधर जब से चन्ना का बाप 'गज्जोवाल' के फज़ल के साथ कमालिया जाकर लौटा फ़ज़ल के बेटे नारू का ही चर्चा करने लगा। चन्ना के ऊर्ध्व-मुख पुष्ट जोबन के नीचे किसी गहराई से एक उसास उठ सूर्य के प्रखर ताप में चकाचौंध करती रेत की कोमल लहरियों पर बहती गरम वायु के साथ दूर-दूर तक बह जाती। हृदय में उसके एक गड़न अनुभव होने लगती। जोवन का एक अवरोध, जैसे उठते हुए उसके जोबन को कोई भीतर की ओर मसले दे रहा हो .....।

हृदय में उठती पीड़ा को वश करने के लिये दाँतों से होंठ दबाये वह घर की साँड़नी और नई ब्याही भैंस के आगे लोहे के तसले में पानी छोड़ती हुई अपने भाग्य की बात सोचने लगती--उसकी क़िस्मत ही ऐसी है। मम्दा कैसा जवान और चतुर है। परन्तु क्या ? इतना बड़ा हो गया और अब तक उसके सिर पगड़ी नहीं बँधी। मम्दा के बूढ़े बाप कादिर की ही अक़्ल को जाने क्या हो गया है ? आख़िर बेटा क्या सदा बच्चा ही बना रहेगा ? आस-पास की बस्तियों के लड़के, जिनके अभी रेख तक नहीं फूटी, जो कल तक माँ का आँचल पकड़े चलते थे, कार (चोरी) करके शान से पगड़ियाँ बाँधे, सिर ऊँचा किये फिरते हैं। और मम्दा को देखो, अभी तक गले में दुपट्टा डाले फिरता है। मम्दा चाहे तो क्या कार नहीं कर सकता ? बूढ़े बाप को बेटे का इतना मोह है कि उसे गोद में ही लिये रहना चाहता है। बूढ़े के घर में किसी चीज़ की कमी न सही लेकिन बेटे को भी तो आदमी बनना है। कार नहीं करेगा तो मर्द कैसे गिना जायगा ? जांगली का बच्चा कार नहीं करेगा तो क्या चूड़ियाँ पहनेगा, सिर पर पानी ढोयेगा और छाछ बिलोयेगा ? और कुछ नहीं तो एक मामूली बछेरी ही सही ! आस-पास इतने बाज़ार हैं, सड़कें चलती हैं। मम्दा जवान है और चतुर, चाहे सौ कार कर सकता है। ऐसा कौन ख़तरा पड़ा है मम्दे के लिये ही ? वह कुछ करे तो ! क़ादिर का नाम बड़ा है तो क्या ? जांगली का बेटा है तो कार करनी ही होगी। कार नहीं करेगा तो पगड़ी नहीं होगी और पगड़ी नहीं होगी तो ब्याह कैसे होगा ?

फ़ज़ल के बेटे नारू ने पहली दफ़े कमालिया के बाज़ार में कार की। पकड़ा गया, कंधे पर चोट भी आई। लेकिन क्या ? तीन ही महीने में फिर दूसरी दफ़े गया। कोई बड़ा माल न सही

कार तो उसने की ! अब पगड़ी बाँधकर मर्दों की तरह घूमता है। मर्द को तो कार मरनी ही है। फिरंगी की पुलिस क्या मम्दा के लिये ही रह गई ?...मेरा क्या होगा ? न बूढ़ा कादिर मम्दा को कुछ करने देगा, न उसके पगड़ी बँधेगी ? फिर ब्याह हो कैसे सकता है ? और अब्बा कब तक राह देखेंगे ? आस-पास की मेरी उम्र की लड़कियाँ सब ब्याही गईं। एक दिन मेरे भी हाथ-पैर बँध जायँगे।

चन्ना की आँखों में आँसू आ जाना चाहते थे। तसले से जल पी, बिलबिलाते होठों से जल की धार बहाते हुए दम्मा सांडनी ने गर्दन उठा चन्ना की आँखों में देखा। यह सांडनी घर की बरकत थी। चन्ना के जन्म से पहले ही उसके बाप ने एक सौदागर से दम्मा को छीना था। तब वह अभी बच्ची थी परन्तु रात भर में तीस कोस की मंजिल पार कर आई। तब से घर में कितनी बरकत थी। दम्मा जब-जब ब्याती, चन्ना का बाप चनाव के कछार में सांई के मज़ार पर चद्दर जरूर चढ़ाता।

कछार के सांई की भी क्या करामात है ? कोई मन्नत उसके मज़ार पर मानी जाय और पूरी न हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। श्रद्धा से मज़ार की दिशा में चन्ना ने सिजदा किया। वह सोचने लगी—कैसे सांई की मज़ार पर जाकर वह बूढ़े कादिर को सुमति देने और मम्दा की पगड़ी शीघ्र हो जाने की मन्नत मान आये ? मन्नत अगर वह मान आये तो फिर पीर-फकीर की दुआ से, इंशा-अल्ला (भगवान की इच्छा से) सब ठीक हो जाय। परन्तु मज़ार तक वह पहुँचे कैसे ? चनाव के कछार में तो लड़कियाँ अकेली जाती नहीं। दूर तो कुछ भी नहीं, यही तीन कोस जगह होगी ! पर जाय कैसे ? कोई देखेगा तो कहेगा—इसे मज़ार से मतलब ? जब रहीम के बदन पर दाने फूले थे, अम्मा उसे ले गई थी पर अब वह कैसे जाय ?

रात पड़ गई। दिन की धूप और लूह सूरज के साथ सिमिट कर पश्चिम दिशा की ओट जा छिपी। जेठ की कृष्णपक्ष की पंचमी का चाँद क्षितिज पर उठते-उठते हवा ठण्डी पड़ने लगी। दिगंत तक फैले बंजर में रेत का स्पर्श शीतल हो गया। छोटी-छोटी झाड़ियों, डेले, पीलू, आक और जंड के कुड़मुड़ाये वृक्ष तपती वायु में हू-हू करने के बाद शान्ति की साँस लेने लगे। एक नीरव शान्ति बंजर की सीमा तक फैल गई। कहीं भैंस के पीठ पर पूँछ फटकार देने या कभी धीमे से जानवरों के खुर बदल लेने का शब्द सुनाई दे जाता। कभी कहीं किसी कुत्ते के निरुद्देश्य हवा में मुख उठा ज़रा सा भोंक देने की आवाज़ आ जाती।

चन्ना के बाप का सबल श्वास खुर्राटे के स्वर में बदल गया जो रात की शान्ति को और भी गम्भीर बना रहा था। उसकी माँ साथ सोये बेटे की पीठ पर ममता का हाथ रखे बेसुध पड़ी थी। अशान्ति, सब के भाग की सिमिट कर, चन्ना के ही हृदय में समा गई थी। उसकी फैली हुई आँखों में नींद का पता कोसों न था। एक ख़याल उसके मन और मस्तिष्क को बेचैन किये था—किसी तरह एक बार चनाव के कछार में सांई के मज़ार पर मन्नत मान आये कि मम्द्रा के सिर पगड़ी बँधे... वह मम्द्रे की हो चुकी .....उसी की हो कर रहेगी।

विस्तृत बंजर के धूमिल आकाश में पीला चाँद सिर पर चमक रहा था। चन्ना उसकी शीतलता में छटपटा रही थी और अपनी काली चादर को आँसुओं से तर कर रही थी। रोने से क्या होगा ? सांई के मज़ार पर मन्नत माने बिना तो कुछ हो नहीं सकता ! और दिन में मज़ार पर उसे कोई जाने क्यों देगा ?

खाट की पटिया पर शरीर का बोझ सम्भाल वह चुपके से उठी कि खाट चर्रा न उठे। पंजों के बल वह अम्मा और अब्बा

की खाट बचाकर निकल गई। परिचित शरीर की गंध पा सांड़नी ने अपने नोकीले कान खड़े कर शंका से उसकी ओर देखा। चन्ना ने हाथ उठा उसे चुप रहने का इशारा कर दिया। बाड़े के पास भूरे कुत्ते ने उसे देख पूँछ हिलाई। होठों पर उँगली रख उसे भी चुप रहने का संकेत कर, बाड़े के खटके को हटा और फिर से लगा, वह बाहर निकल गई।

कुछ क़दम वह तेज़ चाल से चली और फिर आहट का भय न होने पर दौड़ने लगी। लम्बी राह में कई दफ़े किसी झाड़ी या जड के वृक्ष को देख, भूत के सन्देह से उसका कलेजा धक-धक करने लगता। परंतु वह 'या अली!' कह और सांई का ध्यान कर आगे बढ़ती गई।

मज़ार पर छाये बेरी के वृक्षों की टेढ़ी मेढ़ी शाखाओं की छाया खरिया मिट्टी से पुते तकिये पर पड़ रही थी। तकिये के आले में जलते हुए चिराग़ की काँपती हुई लौ का प्रकाश सामने फैली हुई छाया और चाँदनी की चित्रकारी को अपने धुँधले लाल प्रकाश में झिलमिला-सा बनाये दे रहा था। रात के सन्नाटे में मज़ार पर चिराग़ जलता देख चन्ना घबराई। यह कौन वहाँ पहले से ही आ बैठा है? किसी दूसरे के देखते कैसे वह मजार पर जा सकेगी? यों, इतनी दूर आ, क्या मन्नत माने बिना ही उसे लौट जाना पड़ेगा?

अम्मा और पास पड़ोस की स्त्रियों से चन्ना ने सुना था कि कछार के सांई की महिमा पीरों में इतनी है कि भूत और जिन्न तक उनके तकिये पर सिजदा करने आते हैं और मन्नत के चिराग़ जला जाते हैं। तब बेरी की डालियों से सीरिनी और फूल झड़ते हैं। चन्ना ने आँख मूँदकर कहा—या अली! और मन ही मन सांई को सिजदा किया। अली के नाम से जो न भागे, ऐसा कौन जिन्न है?

लेकिन चिराग़ के धुँधले लाल प्रकाश से शाखाओं की नाचती हुई छाया में तकिये के पैताने दुआ माँगने बैठा वह आदमी जैसा का तैसा बना रहा। चन्ना साहसकर दबे पाँव आगे बढ़ी कि देखे तो कौन है ? पत्तों की सरसराहट में उसे सुनाई दिया—अपना ही नाम ! एक बिजली सी उसके शरीर में एड़ी से चोटी तक कौंद गई। चौकन्ने कानों सुना और आँख फाड़-फाड़ देखा ! पहचाना—मम्दा था, और सांई के हुजूर में दुआ माँग रहा था कि चन्ना उसे मिले।

निर्भय हो आगे बढ़ चन्ना ने अपना माथा सांई के तकिये पर टिका दिया और मन्नत मानी कि जल्दी ही मम्दा के सिर पगड़ी बंधे और मम्दा का निकाह उससे हो तो निकाह के बाद पहली जुम्मेरात (बृहस्पति) को तकिये पर चद्दर और सीरिनी चढ़ायेगी। तब उसने मम्दा की ओर देखा !

धुँधले लाल प्रकाश में चन्ना ने देखा, मम्दा की सतृष्ण आँखें उसी की ओर लगी हैं। वे दोनों समीप आ गये। मम्दा ने चन्ना को बाँहों में ले लिया। चन्ना ने अपना सिर उसके सीने पर टिका दिया। मम्दा ने धीमे स्वर में पुकारा—"चन्ना !" नेत्र झपक चन्ना ने मूक हामी भरी। मम्दा ने कहा—"चन्ना मैं तेरे बिना जी न सकूँगा।"

आँखे पोंछ चन्ना ने मम्दा को बताया—"आजकल अब्बा फ़ज़ल के बेटे नारू का ज़िक्र करता है।" और फिर कहा—"मै तो मर जाऊँगी तेरे बिना ! पर मेरा बाप क्या करे ? तेरी तो अभी तक पगड़ी भी नहीं हुई। तेरे बाप को हो क्या गया ? मर्द बच्चा है तू ! आख़िर कब तक ऐसे बैठा रहेगा ? कार नहीं करेगा तो करेगा क्या ? तेरे लिये यह कौन बड़ी बात है। मम्दा मै कब चाहती हूँ तू ख़तरे में पड़े। पर जांगली के मर्द-बच्चे को तो यह

करना ही है। सांई का हुकुम है और अपनी जात की रीत है। और तू ख़तरे में काहे को पड़े। ऐसे ही कुछ छोटी-मोटी कार कर ले। कौन बड़ी बात है ? कोई मुसाफिर ही मिल जाता है। शहर बाज़ार है। वहाँ पुलिस बहुत है पर सुनते हैं कि लोग डरते भी बहुत हैं। देख, रब्बे का बेटा सद्दू भी क्या मर्दों में मर्द है ? सुनते हैं ओकाढ़े के बाज़ार से किसी मुसाफ़िर की घोड़ी की पुरानी काठी उठा लाया। लोग दो दिन हँसे! पर क्या..... पगड़ी तो बाँधे फिरता है। मर्द तो हो गया...निकाह भी हो जायगा ! तेरे अब्बा का तो कितना नाम था ..?"—चन्ना सिसक-सिसककर रोने लगी और कहा—"सांई और पीर की दुआ से तेरा बाल न दुखे। मैं तुझ पर सौ दफे सदके जाऊँ। तेरी बलायें मुझे लगें......।"

चन्ना का सिर गोद में ले मम्दा ने प्रण किया—वह जल्दी ही कार करेगा। वह डरता थोड़े ही है; पर बूढ़े बाप का क्या करे ? वह उसे आँख से ओझल नहीं होने देता। चन्ना के सिर पर हाथ धर कर उसने कहा—"मेरी चन्ना, तेरी दुआ से इस जुम्मेरात तक ही देखना ! कुछ कर दिखाऊँगा फिर तो तू मेरी होगी न ? बहुत देर तक दोनों अपने धड़कते हुए हृदयों को मिला एक दूसरे को आश्वासन देते और पाते रहे।" घबराकर चन्ना ने कहा—"देख, अब चलें ! चोरी से आई हूँ ...अब्बा की नींद का क्या......चलूँ!...मुर्ग़ा बोलने का समय हो रहा है।"

पूरी शक्ति से दौड़ती हुई चन्ना लौट चली। उसे भय न था, थकान न थी। साँई का आशीर्वाद और मम्दा का प्यार उसके हृदय में था। भूरा कुत्ता आहट पा चौकन्ना हो गुर्राया परन्तु गंध पहचान दुम हिलाने लगा। उसके सिर पर हाथ फेर चन्ना चुपके से खाट पर जा लेटी। शांति और आश्वासनन से उसे नींद आ गई।

× × ×

बस्ती में खबर आई—मम्दा ने साहीवाल के सरकारी अस्तबल से संगीनों के पहरे में से अरबी घोड़ी निकाल ली ! ख़बर से बड़े-बूढ़ों की आँख प्रसन्नता से चमक उठीं। ऐसी बड़ी कार और जवाँमर्दी की बात मुद्दत से किसी ने नहीं की थी। लोगों ने कहा—मम्दा आख़िर तो क़ादिर का बेटा है! शेर का बच्चा शेर ही होगा, गधा तो हो नहीं जायगा ! चन्ना ने सुना और उसका मन उत्साह से उछल पड़ा। चनाव के कछार की ओर मुँह कर उसने मन ही मन सांई के मज़ार को सिजदा किया। जुम्मेरात के दिन सांई के मज़ार पर चद्दर चढ़ाने की बधाई में क़ादिर के यहाँ से चन्ना के घर सीरिनी का कटोरा भी आया।

उस रात हृदय में उछलते उछाह को समेटे, खाट पर दम रोके लेटी, चन्ना माँ-बाप की बात सुनती रही। अम्मा कह रही थी—"मम्दा तारों में चाँद की तरह है। मैं तो पहले ही कहती थी-बड़े घर का लड़का है, उसे ज़रूरत क्या थी ? पर अपनी जात का धर्म उसने पूरा किया। कार भी की, कि रहे नाम सांई का ! अब उसकी पगड़ी हो जाय तो चन्ना का निकाह उससे पढ़ा दें। देखते नहीं हो, लड़की की क्या उम्र हो रही है ! . उसे भी तो अपना मर्द चाहिये !" बाप ने कहा—"हाँ तो मैंने कब और कुछ कहा है ! मैं तो यही देख रहा था कि लड़के की पगड़ो हो जाय !"

आस-पास की बस्तियों में ख़बर फैल गई कि क़ादिर के लड़के मम्दा की पगड़ी होनेवाली है। मम्दा मिंटगुमरी के बाज़ार से डेढ़-बर कोरे लट्ठे का लाचा (तहमत) बाँधे, हरी लाल रेशमी मिर्ज़ई पर अद्धी की मलमल का कोरा कुर्ता पूरे बर की आस्तीन का पहिरता। पगड़ी अभी सिर पर बाँध न सकता था परन्तु मलमल में बट चढ़ा कर दुपट्टे की तरह गले में डाले रहता। गर्दन तक छँटे उसके चिकने बालों में जड़ाऊ कंघी और पैरों में कामदार

जूती, झंग की बनी, जगमगाती रहती। अपनी नीली घोड़ी को हमेल पहना, उसके सुमों में घुँघरू बाँधे इस गाँव से उस गाँव निकल जाता। बस्तियों में जवान लड़कियों की मायें अपनी बेटियों के सिर में घी लगा, उनके बाल माथे पर खींच कानों को ढककर बाँध देतीं और आँखों में सुरमा लगा, उन्हें नये कपड़े के नीले कुर्ते और काले तहमत बाँधने को देतीं। ईद में अभी बहुत दिन थे पर ढोल की आवाज़ को छोड़, ईद के रंग दिखाई देने लगे। चन्ना चुप थी। उसकी आँखों और गालों पर गुलाबी झलक छायी रहती। कोई मम्दा का ज़िक्र करता तो उसकी पलक झुक जातीं।

उधर साहीवाल के सरकारी अस्तबल में चोरी हो जाने के कारण गाँव-गाँव तहक़ीक़ात होने लगी। क़ादिर का गाँव साहीवाल से चालीस कोस दूर था। परन्तु इससे क्या? क़ादिर बेपरवाह न था। उसके यहाँ तहक़ीक़ात आये दिन ही होती रहती। पुलिस का विश्वास था, सौ मील के घेरे में कहीं चोरी हो, क़ादिर के यहाँ पता चल जायगा। जानवर का रंग बदलने और उसे छिपाने के लिये 'बार' भर में क़ादिर का घर अड्डा था।

सुबह छाछ की चाटी में से मक्खन का भारी गोला निकाल, छाछ का छन्ना भर चन्ना की माँ ने बाप के सामने रखा और हाथ की चिकनाई सिर से पोंछते हुए चिंता के स्वर में बोली—"दुश्मन के सिर सांई का क़हर गिरे! पर अगर कुछ भला-बुरा मम्दा को हो गया तो क्या होगा? तुम सांई के मज़ार पर मन्नत मान आओ!"

छाछ का छन्ना एक साँस में खाली कर अपनी तराशी हुई मूछों को होठों से पोंछते हुए चन्ना के बाप ने कहा—"ज़माना तो बुरा है। इधर अपने कई जवान फिरंगी की जेलों में पड़े हैं।

जांगली फिरंगी को टिकस नहीं देता। इससे फिरंगी की सरकार जांगली से दुश्मनी मानती है। सरकार चाहती है जांगली खेती करे और फिरंगी को टिकस भरे।"

छाछ की चाटी कोने में टिका, विस्मय से हाथ मल चन्ना की मां ने कहा—"हाय हाय, ऐसा भी कभी हो सकता है ? हाय अल्ला ! ऐसे जुल्म तो कभी नहीं सुने थे ! जो बाप दादा ने कभी नहीं किया, वह कैसे कोई कर सकता है ?'

उसी समय बाहर घोड़े की टाप सुनाई दी। पड़ोस की बस्ती से एक जवान आया। उसने खबर की कि पुलिस और फौज कादिर के सारे कुनबे को घेर कर पकड़ ले गई।

चन्ना की मां नूरी ने सौ-सौ लानत फिरंगी के जुल्म को दीं। गम्भीर चिन्ता में डूब कर चन्ना के बाप ने कहा—"अब किसी की इज्जत नहीं बच सकती। फिरंगी-सरकार कादिर को जरायम पेशा वाले इलाके में क़ैद कर देगी। वहाँ सरकार जांगली से जबरदस्ती हल चलवा कर खेती कराती है......हथियार लेकर लकड़ी छीलनी होती है। ऐसी हालत से मौत अच्छी। अब क़यामत तो हो ही रही है। मेरे बाप के जमाने में माल एक दफे चनाव और जेहलम पार हो जाता तो उसका पता शैतान को भी नहीं लग सकता था। अब जमाना यह है कि घर आये पशु लौट जाते हैं। अब जीने का क्या धर्म !"

चन्ना की मां ने सिर पीट कर कहा—"चनाव और जेहलम के बीच के इस देश को आग लग गई। अब कैसे किसी की इज्जत बचेगी ? और हाय चन्ना का क्या होगा ?"

"होगा क्या ?'—बेबसी और क्रोध में लम्बी सांस खींच कर चन्ना के बाप ने कहा—"यहाँ रहने का अब धर्म नहीं। जांगली की औलाद होकर क्या कमीन किसान की तरह हल

जोतेंगे और कारीगर की तरह दस्तकारी करेंगे?"—उसकी आँखों से आग बरसने लगी। उसने कहा—"लगा दो आग इस छप्पर में! तू सांड़नी पर बैठना, मेरे लिये घोड़ी है, कपड़ा लत्ता भैंस पर लाद लेंगे, इस देश को छोड़ जांयगे। वहीं जाकर रहेंगे जहाँ फिरंगी का राज न होगा, जहाँ रेल का शैतान न होगा, जहाँ नहरों के जाल न होंगे। अल्ला की बनाई धरती के फिरंगी ने टुकड़े कर दिये। और पानी को बाँध दिया। इस कुफ़ का नतीजा और क्या होगा? ऐसी जगह किसी का ईमान कैसे रह सकता है?····· लाहौल बिलाक़ुव्वत! तोबा मेरे सांई सच्चे!"

"और चन्ना का क्या होगा?"—रोते हुए नूरी ने पूछा।

जवान लड़की का माँ-बाप के घर क्या मतलब? उसे अपने मर्द के यहाँ जाना चाहिए। मैं कभी से कह रहा था, फ़ज़ल का बेटा नारू जवान हुआ, उससे चन्ना का निकाह करदे। पर तूने माना नहीं। औरत की बात पर चलने से ऐसा ही होता है। मैं आज ही जाता हूँ फज़ल के घर!

माँ सिर धुनकर रह गई। चन्ना सारा दिन घुटनों में सिर दिये बिलख-बिलखकर सांई सच्चे की दुहाई देती रही।

तीसरे दिन दोपहर में सांई के मज़ार पर तुरही और ढोल बजाकर नारू और चन्ना का निकाह पढ़ा दिया गया। दूल्हा-दूल्हन दोनों ने मज़ार पर सिजदा किया। आँखों के आँसू पीकर चन्ना ने दिल ही दिल दुआ माँगी—या सांई सच्चे, मेरे मन्दा का तू ही रखवारा है····· तेरा ही एक भरोसा है!

और—नारू के दुपट्टे से अपनी चूनरी का छोर बाँध वह उसके गाँव चली गई।

सुनन्दा एक पहेली है। कभी वह बोलने लगती है तो बहुत कुछ बोल जाती है; ऐसी बातें जो कोई दूसरी स्त्री कह नहीं सकती, जो कहनी भी नहीं चाहिये। यों किसी के दिल की बात का क्या कहा जा सकता है? कितनी ही बातें हैं जो कितने ही दिलों में घुट-घुटकर रह जाती हैं।

और सुनन्दा चुप हो जाती है तो फिर बोलती ही नहीं। प्यार और स्नेह का उत्तर देती है, जली-कटी बात और ताने के रूप में। काटने को दौड़ती है। मानो चाहती है, उससे कोई न बोले और वह अपने एकान्त में तकिये को आँसूओं से तर करती रहे।

मैं राधा की बात कह रही थी जो ससुराल में सब कुछ होते हुए भी कभी प्रसन्न नहीं दिखाई दी। तड़पकर सुनन्दा ने कहा— "तुम्हें किसी की नाराज़गी और खुशी से क्या मतलब? क्या तुमसे पूछकर ही सबको खुश और नाराज़ होना चाहिये? तुम्हें क्या मालूम कौन नाराज़ है और कौन खुश! तुम्हें क्या मालूम मैं नाराज़ हूँ या खुश?" उसका चेहरा लाल हो गया और उसने मुँह फेर लिया।

एक आध धमकी से चुप हो जाने की आदत मेरी भी नहीं।

जवाब दिया—"नाराज़गी का कारण भी तो होना चाहिये। सास उसके नहीं जो दिक़ करे। ससुर दूर गाँव में रहता है। खाने पहरने की कमी नहीं। पति अच्छा कमाने वाला, देखने और लियाक़त में हज़ारों में एक!"

बिगड़कर सुनन्दा ने कहा—"तुम अपनी पसन्द की बात कह रही हो या राधा की? खाने को अन्न, ओढ़ने को वस्त्र, सन्तान का बोझ लादने को एक पति मिल जाना ही सब कुछ है? गौशाला की गौ ही बन जाना ही संतोष का कारण होगा? इन्सान के दिल और दिमाग़ का संतोष कुछ नहीं?"

"मन माफ़िक पति......—मैं कहने जा ही रही थी कि सुनन्दा ने मेरी बात काट दी और बोली—"मन माफ़िक क्या होता है? क्या मन सदा एक-सा रहता है?...क्या आँखों को सदा एक ही रंग भाता है? क्या एक ही किस्म की खुशबू सदा अच्छी लगती है? क्या एक ही राग कानों को सदा अच्छा लगता है? और फिर आज जो कुछ देख या समझ पाया है, उससे अच्छा देख या समझ पाना सम्भव नहीं?"—अपनी बात बीच ही में छोड़ वह कुछ सोचने लगी और फिर बोली—'नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिये!...अगर ऐसा हो, ख़ास तौर पर औरत के लिये, तो यह उसका पाप है, उसका दुर्भाग्य है।" दुख से उसका चेहरा काला पड़ गया और मानो किसी डर से उसने आँखें बन्द कर लीं?

सुनन्दा का लड़का कक्कू रोनी सी आवाज़ में ठुनकता हुआ भीतर से निकल आया। सुनन्दा को तसल्ली देने के लिए मैं उसके बच्चे को गोद में ले प्यार करने लगी। बच्चे की ओर देख सुनन्दा ने मुँह फेर लिया, मानों बड़ी अप्रिय जिम्मेवारी उसके सामने आ खड़ी हुई हो।

खीझकर उसने कहा—"इस कमबख्त आया को जाने क्या हो जाता है ? बच्चे को मेरे ही सिर पर मार जाती है।"

"हाय हाय, कहती क्या हो ?"—बच्चे को गोद में खींचते हुए ताने भरे लहजे में मैंने कहा—"क्या तुम्हें बच्चा प्यारा नहीं लगता ?"

रूखी आँखों से एकटक मेरी ओर देखते हुए उसने कहा—"सच कहूँ......नहीं लगता।"

अब तक जो बात कभी न सुनी थी, वही सुनकर हैरान रह गई...मां को बच्चा प्यारा नहीं लगता। आग्रह से मैंने पूछा—"आखिर मतलब क्या ?"

"मतलब बहुत कुछ है और कुछ भी नहीं"—कहकर जो गहरी साँस उसने खींची, वह मेरे सीने से पार होगई। उसकी आँखें खुश्क थीं परन्तु मेरी आँखों से आँसू टपकने लगे। कुछ नरम पड़ कर उसने कहा—"कला ! जानती हो, बच्चे प्यारे क्यों लगते हैं ?"

"बच्चे तो प्यारे होते ही हैं"—मेरे पास और उत्तर न था।

मेरी आँखों में घूर कर उसने पूछा—"चाहे मजबूरी में ही क्यों न उन्हें पेट में ढोना पड़े ? अपने जीवन की सम्पूर्ण शक्ति लगा कर जिस चीज को तुझे तैयार करना पड़े, वह तेरे मन माफ़िक न बने, तो तुझे संतोष होगा ? ... डूब मरने को तेरा दिल नहीं करेगा ? जब तू जानती है, तुझ पर बोझ लादा जा रहा है—बल्कि जब तुझे मालूम हो कि तेरे शरीर के लहू और मांस से तेरे मन के खिलाफ़ एक आदमी तैयार किया जा रहा है ! तब तुझे कैसा लगेगा ? एक आदमी बेजान, बेहिस, जिसमें हिम्मत नहीं, हौसला नहीं......।"

वह चुप होगई और कुछ देर में कहने लगी—"तुम जानती

हो, यह तो किसी से मिलते जुलते नहीं, परन्तु इनके छोटे भाई के मिलने जुलने वालों की कमी नहीं। इस मार्च में उनके एक दोस्त आये थे। आदमी मैंने भी बहुत देखे हैं परन्तु वह कुछ अजीब था।"

एक लम्बी साँस सुनन्दा ने ली और बोली—"उसका सब ढंग निराला था और जैसे लोहे की कील की तरह वह मेरे दिमाग़ में गड़ता चला गया। वे दुपहर में आये। इनके छोटे भाई ने कहा—"इन्हें कुछ पिलाओ !"

नौकर पानी लाया। उसके हाथ से गिलास ले मैंने कहा—बरफ़ नहीं है, ठहरिये ! अभी आ जाती है, यों पानी अच्छा न लगेगा। एक मुस्कराहट से पानी का गिलास उन्होंने मेरे हाथ से ले लिया और बोले—"वाह आपका हाथ छू जाने पर भी उसमें ठण्ढक न आयगी ?"

वे पानी पी गये। उनकी वह मुस्कराहट और उनका वह ढंग ! मैं धक सी रह गई। कुछ बोल न सकी परन्तु सिर मेरा घूम गया। समझ न सकी कि अच्छा लगा या बुरा ?

देवर ने कहा—"यह मजदूरों के लीडर हैं। जेल से आ रहे हैं। शाम को इन्हें लेक्चर भी देना है। खूब ख़ातिर करना ताके खूब बकें और फिर आराम से जेल काटें।"

बाहर गुलाब की झाड़ी के पास कुर्सी पर बैठे वे अख़बार पढ़ रहे थे। उन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं ? यह जानने के लिये बहुत शर्माते हुए उनके पास जा कर पूछा—"जेल में आपको बहुत तकलीफ़ रही होगी। कितने दिन आप वहाँ रहे ?"

वे कुर्सी से उठ खड़े हुए और मुझे बैठने का इशारा कर बोले—"बैठिये न तो सुनाऊँ आपको ?" कुर्सी को फूलों के पास सरकाकर उन्होंने कहा—"यहाँ बैठिये, फूलों के पास। जेल में

फूल तो देखने को मिल जाते थे परन्तु स्त्री कभी देखने को नहीं मिलती।"

उन आँखों के सामने बैठना मेरे लिये मुश्किल होगया परन्तु वहाँ से उठकर जाया भी तो नहीं जा सकता था। उनकी ओर मैं देख नहीं रही थी परन्तु उनकी नज़र को अपने शरीर पर अनुभव कर रही थी। जैसे बिजली की लिफ्ट में ज़मीन से पैर उखड़े हुए मालूम होते हैं वैसे ही कुछ मुझे अनुभव हो रहा था। उससे पहले तो कभी ऐसा जान नहीं पड़ा।

उन्होंने कहा—"जेल में कष्ट होने की बात आप पूछती हैं जेल तो बनाया ही तकलीफ़ के लिये गया है । जैसे आपसे सुख मिलना स्वाभाविक है वैसे ही जेल से कष्ट मिलन स्वाभाविक है।"

"मैं सुख दे सकती हूँ"—यह कितनी बड़ी बात है; उन्होंने ही मुझे यह सुझाया। इच्छा होती थी, उनकी नज़र मुझपर बनी रहे......। लकिन भय भी लगता था।

दूसरे दिन सिर धोकर बाल सुखाने के लिये मटर के फूलों की टट्टी की ओट में बैठी थी। कदमों की आहट पाकर देखा, सुबह का अखबार लिये वे चले आ रहे हैं। हाथ की सिलाइयों को फेंक झट से आँचल सीधा किया।

कुछ झेंपते हुए उन्होंने कहा—"मुआफ़ कीजिये, मुझे नहीं मालूम था, यहाँ नहीं आना चाहिये। ऐसी सुन्दर जगह आपने अपने लिये रिज़र्व कर रखी है। वह लौट जाना चाहते थे। आँचल सिर पर सम्भालकर मुझे कहना पड़ा—"नहीं देखिये! यदि यह फूल आपको पसन्द हैं तो इन्हें देखिये।"

"लेकिन अच्छी चीजों को छिपाकर रखने का क़ायदा जो है! आपके बाल किसी को तकलीफ़ तो देते नहीं! फिर उन्हें छिपाया

क्यों जाय ? और यदि आड़ मे मैं आपको देखता रहता तो ? ......आपका कुत्ता या नौकर आपको देखता रहे तो कोई एतराज़ नहीं। जो देखना चाहता है, जो समझ सकता है, उसीसे छिपाया जाता है।"

उनकी बातों से घबराहट होने लगी। सिर झुकाकर मैं बैठ गई। उन्होंने कहा—"आपको तकलीफ़ होती है मैं जाता हूँ।"

"नहीं तकलीफ़ नहीं होती।" मैंने कहा—और कुछ कह न सकी। उन्होंने कहा— 'तो फिर वैसे ही बैठिये।"

बड़ी कठिनता से सिर ऊँचा किया। वे बोले—"नहीं तब तो साड़ी के इस आँचल में आप पार्सल नहीं बनी हुई थीं। ब्लाउज़ के बटन भी नहीं लगे हुए थे।"

मुझसे रहा न गया। उठी और आकर अपने बिस्तर पर लेट गई। लेटना भी मुश्किल मालूम होता था। मन चाहता था, फिर वहीं जा बैठूँ परन्तु पड़ी रही।

शाम की चाय बैठने के कमरे में रख दी गई थी। चाय के लिये बुलवाया और कोई वहाँ था नहीं। सामने बैठकर उन्होंने कहा—"मैं डर गया था कि आप नाराज़ हो गईं। मैंने आपको तकलीफ़ दी। लेकिन उसमें मेरा कुसूर भी क्या था ?...अगर कोई चीज़ अच्छी है और मुझे अच्छी लगती है, तो यह कुसूर कुदरत का है। मेरा मतलब नहीं कि हम जानवर बन जायँ, पर इन्सान तो रहें।"

कुछ देर चुप रहकर उन्होंने कहा—"आप तो बोलती ही नहीं; क्या मैं बहुत बक-बक करता हूँ ? क्या सब कुछ गलत सोचता हूँ ?" वह मेरी तरफ़ देखने लगे।

बड़ी कठिनता से उत्तर दिया—"नहीं आप अनुचित कुछ नहीं कहते परन्तु मैं क्या कहूँ मैं तो कुछ सोचती ही नहीं।" कह

तो गई परन्तु स्वयम अपनी यह कमी मान लेना भला भी नहीं मालूम हुआ।

उन्होंने बात पकड़ ली—"जी ! यही तो मैं भी कहता हूँ कि आप सोचती नहीं और लोग भी नहीं सोचते । हम आज़ादी-आज़ादी बहुत चिल्लाते हैं परन्तु उसका मतलब ? ख़ासकर स्त्रियों के लिये आज़ादी का मतलब ? उनके घर हैं, पति हैं, बच्चे हैं परन्तु यह सब क्या सोच समझकर उनकी इच्छा से होता है ? उन्हें जिस दड़बे में बन्द कर दिया, वहीं अण्डे बच्चे देने लगीं......।

"मुआफ़ कीजिये क्या कह गया ? परन्तु उनकी अपनी इच्छा का सवाल कहीं नहीं । फिर उनकी आज़ादी किस बात की ? पुरुष ही इस बात का निश्चय करेंगे कि स्त्री को आज़ादी चाहिये या नहीं और चाहिये तो कितनी ख़ूराक ! उनका जितना सदाचार और इख़लाक है, सब मर्दों का बनाया हुआ। मेरा विचार है, ज़बरदस्ती सदाचारी और सआदतमन्द बना दिये जाने से आदमी बिना इख़लाक ही अच्छा।"

वे चुप हो मेरी तरफ़ देखते रहे और फिर पूछ बैठे—"मैं बहुत बेहूदा बकवास कर रहा हूँ ?"

"नहीं"—मैंने जवाब दिया—"बातें आप बहुत अच्छी करते हैं ?"

"बातें ही करता हूँ ! पर आदमी अच्छा नहीं हूँ !"—उन्होंने कहा—"और कुछ नहीं......।"

"नहीं, आप बहुत अच्छे आदमी हैं"—मुझे कहना पड़ा। दिल तो कुछ और भी कहने को भी छपपटा रहा था परन्तु ज़बान पत्थर की हो रही थी।

वह ज़ोर से हँस पड़े और बोले—"दरअसल ? तो फिर आप मेरा जैसा एक और आदमी पैदा कर दीजिये न ?"

शर्म से मेरा सिर झुक गया। ऐसा जान पड़ा अभी उनका हाथ मेरे कंधे पर आजायेगा।

क्या कह गये, यह समझकर वे घबराई सी आवाज़ में बोले—"देखिये, मुझसे डरने की कोई ज़रूरत नहीं क्योंकि मैं ज़बरदस्ती में विश्वास नहीं रखता। और स्त्रियाँ पसन्द करती हैं केवल ज़बरदस्ती। उनका अच्छा या बुरा सब काम ज़बरदस्ती से होता है। धर्म और पुण्य करती हैं, ज़बरदस्ती करवाने पर, पाप करती हैं, तो मजबूर होकर। यह ज़बरदस्ती और मजबूरी ही मुझे नापसन्द है।"

वे उठकर चले गये। उसी रात वह हमारे यहाँ से भी चले गये। छोड़ गये अपनी याद और एक बात—'ज़बरदस्ती'!

सुनन्दा की आँखें गुलाबी हो गईं। उसके स्वर से जान पड़ता था मानों उसके प्राण प्रतिहिंसा की व्याकुलता से छटपटा रहे हैं। गला बेबसी के कारण रुँधा जा रहा है।

उसकी पीठ पर हाथ रख मैंने कहा—"सुनन्दा यह कैसी बहकी-बहकी बातें तुम करती हो ? तुम्हारे चेहरे की वह हँसी, तुम्हारा वह संतोष कहाँ गया? तुम्हें यह क्या सनक लग गई?" करुणा से मेरी आँखें फिर डबडबा आईं ?

उपेक्षा से मेरे आँसुओं का तिरस्कार कर उसने उत्तर दिया—"मुझे सनक लग गई......! कला तुम ठीक कहती हो, मुझे सनक लग गई। कला, पिंजरे में पैदा होने वाले पक्षी को कभी ख़याल नहीं आता कि वह खुले आसमान में उड़ सकता है, वृक्षों से ताज़े फल चुग सकता है। उसे कभी ऐसी इच्छा भी नहीं होती। परन्तु एक दफ़े यह जान लेने पर कि खुले आसमान में पर फैलाकर उड़ सकना चाहिये और वह उड़ नहीं सकता, सोने का पिंजरा और घी की चूरी उसके लिये

कलख हो जाती है।...इसे सनक ही कहना चाहिये कला...!

"जब तक जाना न था सब ठीक था। परन्तु एक दफ़े जान लेने पर फिर अनजान कैसे बना जाय?......कला हमारा सबसे बड़ा शत्रु वह है जो अनजान और नासमझी की सुख निद्रा को बरबाद कर देता है.........।"

सुनन्दा ने अपने बच्चे और मकान की तरफ़ इशारा कर कहा—"यह सब क्या है? एक ज़बरदस्ती।......राधा का जीवन क्या है? ज़बरदस्ती और मैं सोचती हूँ......अपनी इच्छा की बात... ....!"

हलाल का टुकड़ा

१०

कांग्रेस स्वराज्य और न्याय की लड़ाई लड़ रही थी। वह सत्य और अहिंसा पर बलिदान हो जाने के लिये तैयार थी। उनका शस्त्र था सत्याग्रह। उन्हें भरोसा था भगवान का।

व्यवस्था की रक्षा का कर्तव्य पूरा करने के लिये सरकार ने ऐसे उपाय किये कि सत्याग्रह के उपद्रव का अवसर ही न रहे। सत्याग्रह की आयोजना करने के संदेह मात्र में लोगों को जेल भेजा जाने लगा।

सत्याग्रह के होनहार बिरवा के पत्ते और कोंपलें दमन की घाम में बच नहीं सकती थीं। इसलिये उसकी जड़ को गुप्त कार्य की तह में बचाये रखने और फैलाने की स्वाभाविक प्रकृति काँग्रस के संगठन में जाग उठी। सरकार द्वारा नियंत्रित साधनों डाक, तार, रेल से सरकार विरोधी कार्य को प्रकट रूप में चलाना जब सम्भव न रहा तब सत्याग्रही दूत भेस बदल, काँग्रस के काम से घूमने फिरने लगे।

'रावत' अपने ज़िले के विशेष उत्साही, चतुर और विश्वास-पात्र काँग्रेसी थे। प्रान्त के गुप्त कार्यालय में अपने ज़िले से आर्थिक सहायता पहुँचाने और प्रान्त के कार्यालय से गुप्त संदेश लाने का कठोर उत्तरदायित्व उनके कन्धों पर रखा गया।

उनकी सत्याग्रही सरगरमियों के कारण पुलिस उनके पीछे थी। पुलिस की नज़र बचा, बरेली से गाड़ी चढ़, प्रत्येक स्टेशन पर पुलिस द्वारा पहचाने न जाने का निश्चय करते हुए वे लखनऊ पहुँच गये।

लखनऊ पहुँच अमीनाबाद के पश्चिम, एक ख़ास मोहल्ले की ख़ास गली में, उन्होंने एक मकान तलाश किया। मकान में बताये हुए चिह्न मौजूद थे, दो मंज़िल के बराम्दे में बाँस की चिकें, नीचे की मंज़िल में दरवाज़े के दोनों ओर दो खिड़कियाँ, मकान की दीवार पर लाल रंग में दवाई के एक विज्ञापन की छाप! समझाये गये ढंग से रावत ने दरवाज़े पर पुकारा; जवाब नदारद। कई बेर दरवाज़ा खटखटाने पर चिक की ओट से झुँझलाहट भरा कर्कश स्वर सुनाई दिया—"नहीं हैं घर पर!"

दो घण्टे तक अमीनाबाद और फतेगंज के चक्कर लगा रावत ने मकान के किवाड़ पर फिर दस्तक दी। फिर वही स्वर और वही उत्तर—"नहीं हैं घर पर......बाहर गये हैं।"

रावत फिर असफल लौटे परन्तु कंधों पर ली हुई जिम्मेदारी ने हृदय में निराशा और पैरों को थकावट अनुभव करने की आज्ञा न दी। सूर्यास्त के बाद तक लखनऊ के गली-मुहल्लों के कई चक्कर काट, पुलिस की सतर्क और सशंक दृष्टि बचाते हुए रावत ने तीसरी बेर उस मकान के किवाड़ फिर खटखटाये। फिर वही उत्तर—"घर पर नहीं है, बाहर चले गये हैं।" और फिर साथ ही सुनाई दिया—"शहर तो छुड़वा दिया फ़िर भी प्राण खाये जाते हैं।"

रावत का माथा ठनका! क्या मकान का भेद पुलिस पा चुकी है? उनका भी तो पीछा पुलिस चुपके से नहीं कर रही? उसी समय गली के सिरे पर खड़ा एक आदमी कुछ संदिग्ध सी अवस्था में दिखाई दिया।

रावत ने तेज़ चाल से गली के दूसरी ओर क़दम बढ़ाये। दूसरी गली में क़दम रख उन्होंने पीछे घूमकर देखा। वह संदिग्ध व्यक्ति फिर दिखाई दिया। उस समय कुरते के नीचे पहनी हुई बण्डी की जेब में छिपा कर रखे प्रान्तीय दफ्तर के नाम गुप्त संदेश और दो हज़ार रुपये के नोटों ने उनके पेट में पंजे से गड़ा दिये। प्राणों की बाज़ी लगाकर इस धरोहर की रक्षा करने के कर्तव्य की याद ने उन्हें उत्तेजित और विक्षिप्त कर दिया। सामर्थ्य भर तेज़ चाल से वे गली से सड़क की ओर चलने लगे। गली के फ़र्श पर पड़ते अपने क़दमों की आहट उनके कानों में गूँज रही थी और उस आहट की प्रतिध्वनि की तरह पीछे आते व्यक्ति के क़दमों की आहट भी। मन और मस्तिष्क की उस बेचैनी में अपने क़दमों की आहट लोप होकर पीछा करने वाले व्यक्ति के क़दमों की आहट ही उनके कानों में गूँजने लगी।

गली से सड़क पर पहुँच जाने पर भी उन्हें जान पड़ा, पीछा करने वाला उनका पीछा किये आ रहा है। ज्यों-ज्यों वे पीछा करने वाले से बचने के लिये भागकर आगे बढ़ते, पीछा करने वाले का भय बढ़ता जाता ।.........प्राणों का भय उन्हें नहीं था। बण्डी में छिपाकर रखी हुई धरोहर की रक्षा के लिये। वे प्राणों की बाज़ी लगा देने के लिये तैयार थे, उस धरोहर में देश के प्रति उनकी जिम्मेदारी, उनके अपने सम्मान का सवाल था। कॉंग्रेस के गुप्त संदेश की रक्षा करना ज़रूरी था और उसके साथ ही कॉंग्रेस की दो हज़ार रुपये की रक़म की! देश की धरोहर होने के कारण इस दो हज़ार का मूल्य उस समय उनकी दृष्टि में पचास हज़ार से अधिक हो गया। इस धन के यों चले जाने से स्वराज्य के कार्य में बाधा आने के अतिरिक्त उनका अपना

कितना अपमान होगा ? ऐसी अवस्था में ग़बन का सन्देह कितना स्वाभाविक है ?

सड़क पर भी पीछा किये जाने के सन्देह में बाईं ओर की बस्ती और मुहल्लों से भयभीत हो वे दाईं ओर के मोड़ मुड़ते गये। पीछे घूमकर देखने के बजाय उन्होंने पूरी शक्ति से भागना ही उचित समझा। सड़क छोड़, घास के मैदानों को लाँघते हुए वे नदी किनारे की सड़क पर जा पहुँचे।

आबाद स्थानों से, जहाँ मनुष्य परस्पर एक दूसरे से सहायता और रक्षा की आशा कर सकता है, रावत को भय लग रहा था। भयंकर निर्जन स्थान, जिनसे मनुष्य सदा डरता है, रावत को उस अवस्था में शरण देते जान पड़ते थे। नदी किनारे की सड़क पर रेल के लोहे के पुल के नीचे से गुज़रते समय गोमती की ओर से आती हुई, भीगी और शीतल वायु ने रावत को याद दिलाया कि लम्बी दौड़ और भय के कारण उनका गला प्यास से सूख रहा है और जिह्वा ऐंठ रही है, पैर बोझल होकर आगे चलना असम्भव हो रहा है। मनुष्य की दृष्टि के भय से बचने और नदी के जल से प्यास बुझाने के लिये वे सड़क से नदी किनारे की रेती पर उतर गये। झाड़ियों को पार कर वे किनारे पहुँचे और पक्के घाट की सीढ़ियों से उतर पानी के कुछ घूँट उन्होंने पिये।

जल के कुछ घूँट पी और नदी की वायु से शान्ति अनुभव कर वे अपनी परिस्थिति की बात सोचने लगे। नदी किनारे की इस जनहीनता में प्रकृति अपना दिल बहलाव कर रही थी। किनारे के छिछले जल में मेंढक अनवरत स्वर से बोल रहे थे। मेंढकों की भैरव टरटराहट के साथ झींगुरों की तीखी झंकार मिलकर उस एकान्त को अत्यन्त शब्दपूर्ण किये दे रही थी। वह

सब कोलाहल रावत के लिये नीरवता थी क्योंकि उसमें मनुष्य का शब्द न था। उस समय रावत को भय था, मनुष्य से। उस समय अपने पीछे मनुष्य को आता देखने की अपेक्षा, साँप को सम्मुख देख उन्हें कम भय लगता। नदी-तट के उस कोलाहल में, नीरवता की शान्ति पा, रावत अपनी कठिन परिस्थिति के विषय में सोचने लगे। कैसे पुलिस की नज़र से बचकर वे बरेली पहुँच सकेंगे? गिरफ़्तार होकर जेल जाने से वे नहीं डरते थे। खयाल था, सिर पर ली हुई ज़िम्मेवारी का!

नदी किनारे की उस कोलाहलपूर्ण शान्ति में अचानक मनुष्य का स्वर सुनाई दिया। चौंककर रावत ने अपनी बाईं ओर घूम, पीछे देखा। उस ओर घाट का आधा भाग, किसी बाढ़ के कारण, बीचोबीच से फटकर तिरछा हो गया था। वहाँ अँधेरे में, ऊपर की सीढ़ियों पर उन्हें दिखाई दी, तीन व्यक्तियों की छाया सी। कान जो कुछ सुन पाये, उसे समझ रावत के मन से भय दूर हो गया।

कुछ देर सुनकर रावत ने समझा—झगड़ा हो रहा है। झगड़ा कुछ लेने-देने के सम्बन्ध में था। आवाज़ें मर्दानी और ज़नानी दोनों ढंग की थीं। स्त्री की आवाज़ कातर हो ऊँचे स्वर में दुहाई देकर कह रही थी—"यह भी कोई इन्साफ़ है? दो रुपये देने को कहे थे तुमने अकेले के......यहाँ दो-दो आदमी! और एक रुपल्ली टिकाये जा रहे हैं।"

पुरुष के स्वर ने धमकाकर कहा—"बकने दो साली को, बदमाश है!"

"अरे लिये जाओ अपना यह रुपया भी हमें नहीं चाहिए।" —स्त्री ने चिल्लाकर कहा—"हम जानेंगे हमने यों ही फेंक दिया—और क्या?"—स्त्री कहती चली गई—"और देखो, हमें यहाँ

अकेले छोड़े जा रहे हैं। अरे हम घर कैसे जायेंगे ?...इस अँधेरे में हम क्या अकेले जायेंगे। अरे हाँ देखो तो,...कैसे बेईमान होते हैं ये लोग ?"

दूसरे पुरुष की आवाज़ ने धमकाया—"बहुत बकबक करेगी हरामजादी ; उठाकर दरिया में फेंक दिया जायगा।"

स्त्री की दुहाई सुन रावत उठ खड़े हुए। वे दो-एक सीढ़ी ही ऊपर चढ़ पाये थे कि देखा दोनों मर्द एक साइकिल को रेती में ढकेलते हुए सड़क की ओर चल दिये। स्त्री, टूटकर तिरछे पड़ गये घाट के भाग में,अपने कपड़े सम्भालती और दुहाई देती रह गई।

परिस्थिति समझने में रावत को कठिनाई न हुई। इसीलिये जाते हुए पुरुषों के गुण्डेपन और अत्याचारपीड़िता के दुराचारिणी होने के विचार ने उनके मन में अन्याय और अत्याचार के प्रति उठते हुए विरोध को दबा दिया।

अपने चिल्लाने और दुहाई देने की कुछ परवा न कर उन मर्दों को चले जाते देख, स्त्री ने रावत को सुनाने के लिये कहा—"हाय हाय देखो तो जुल्म ! साले बदमाश ठगकर चले जा रहे हैं। दो रुपये देने को कह कर हमें लाये। अब एक रुपल्ली फेंके चले जा रहे हैं। बनते हैं साले तमाशबीन !"

कोई उत्तर मिलने की परवाह न कर साड़ी का आँचल कंधे पर खींचते हुए रावत की ओर देख उसने पूछा—"कभी देखे हैं ऐसे साले पाजी ? तमाशबीनी करने चले हैं। जेब में पैसा नहीं। गुण्डे हैं साले, और क्या ? ठग लिया हमको ? अरे हम ऐसों की क्या परवाह करती हैं ? हमारी जूती की नोक से......।'

स्त्री जिस ढग से हाथ और कमर हिला-हिला कर बात कर रही थी, उससे रावत के मन में उसके प्रति सहानुभूति की अपेक्षा घृणा ही पैदा होने लगी। रावत से कोई सहानुभूति न पाकर

भी स्त्री उसी ढंग और स्वर में बोलती चली गई—"अरे ऐसे लुच्चों को हम क्या परवाह करती हैं? हमारे ताल्लुक भलेमानुस शरीफ़ों से हैं। हमने ऐसे एक-एक दफ़े के दस-दस रुपये लिये हैं।" इतने पर भी रावत की ओर से कोई उत्तर न पा उसे चुप हो जाना पड़ा।

रावत की उदासीनता से स्त्री को अधिक बोलने का उत्साह न हुआ, परन्तु सुनसान का भय उसे व्याकुल कर रहा था। कुछ ही क्षण चुप रह दो क़दम रावत की ओर बढ़ वह फिर बोली—"अरे यहाँ कोई इक्का भी तो नहीं मिलेगा! और अँधेरे उजाड़ में कोई बदमाश ही मिल जाय तो जान से भी जायँ। चौक ही तो चलोगे भैया? तनिक हमारे साथ तो चले चलो हुसेनाबाद के चौरहे तक! चौरहे से हम चली जायँगी!" स्त्री ने घूमकर घाट की सीढ़ियों की ओर देखा और आत्मीयता के स्वर में पूछा—"भैया कुछ खाओगे? मिठाई है, गोश्त पूरी है!"

रावत थका हुआ था, भूख भी थी परन्तु उन अपवित्र हाथों से कुछ खाने के विचार से मन घृणा से भर गया। समझते-बूझते हुए भी उसने पूछा—"कौन हो तुम? यहाँ आई कैसे?"

स्वर ऊँचा और हाथ से संकेत कर स्त्री ने उत्तर दिया—"यह देखो न साले गुण्डे हमें बहकाके ले आये! वापिस पहुँचाने को कहके लाये थे और छोड़ गये! हमें सीधी जान ठग लिया! हम ऐसे लुच्चों के साथ कहीं थोड़े ही जाती हैं! हमारा नाम फुलिया है। चावलवाली गली के मोड़ पर हम बैठती हैं। और हम कहीं गप्पू पहलवान से कह दें तो सालों का सिर फोड़ दें। हम ऐसी वैसी टकैत थोड़े ही हैं। शराब पीके आये और कहने लगे हमारे साथ दरिया पर चलो! और यहाँ लाकर छोड़ गये। खुद शराब पी और हमें ताड़ी दी।"

घृणित प्रसंग से रावत के मन में उबकाई आने लगी। क्रुद्ध

स्वर में उन्होंने कहा—"तुम्हें शर्म नहीं आती ? अपने बदन का पेशा करती हो ? भगवान ने तुम्हें हाथ-पैर दिये हैं।"

रावत की बात से चुटियाकर स्त्री ने उत्तर दिया—"तो क्या हम किसी की चोरी करती हैं, क्या माँगकर खाती हैं ?"

स्त्री के उत्तर से रावत की घृणा और क्रोध बढ़ गया। "इस से हज़ार दर्जे अच्छा है माँगकर, चोरी कर खा लो !"—उन्होंने कहा—"ऐसे पेशे से मौत अच्छी !"

धमकी से चुप न हो स्त्री बोली—"एहे बड़े आये ! हम क्यों मरें ? मौत आये दुश्मनों को ! हम क्या हराम का खाते हैं ? किसी के आगे हाथ फैलाते हैं ?...किसी की चोरी करते हैं ?"... कहती हुई स्त्री नीचे की सीढ़ियों की ओर झुकी और खाने-पीने की चीज़ें पत्ते लगे छींके में समेट अकेली ही चलने के लिये तैयार हो सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। परन्तु सहज भय से उसका हृदय धड़क रहा था। वह कहती जा रही थी—"अँधेरा है। कोई चोर, लुच्चा, डाकू कहीं मिल जाय तो और मुसीबत हो.........?"

रावत घृणा से उसकी ओर देख सोच रहे थे—ऐसी निर्लज्ज और दुष्टा को जितना दण्ड मिले अच्छा है ! उसी समय ख़याल आया—स्वयम् रात कैसे बितानी होगी ? कुरते के नीचे बण्डी की जेब पर उनका हाथ पहुँच गया।

× × ×

सहसा घाट की ऊपर की सीढ़ियों पर तीन चार भारी लाठियों के पक्की ईंटों पर पटके जाने का शब्द सुनाई दिया और साथ ही ललकार सुनाई दी—"पकड़ लो सालों को !"

रावत के मस्तिष्क में बिजली-सी कौंद गई—डाकू ! वह स्त्री रावत के बिलकुल समीप आ घिघिया कर बोली—"बचाओ भैया !" स्त्री की आर्त पुकार जैसे रावत के कान में पहुँच नहीं

पाई। कांग्रेस के दो हज़ार रुपये और उन्हें बचाने के विचार ने उनके मस्तिष्क को पूर्ण रूप से घेर लिया। अपने प्राणों पर आये भय की ओर भी उनका ध्यान न गया। उनका हाथ पहले ही नोटों से भरी बण्डी की जेब पर था। नोटों के लिफ़ाफ़े को निकाल पलक मारते में उन्होंने स्त्री के हाथ के पूरियों के छींके में डाल दिया। उसी समय लाठी का एक ज़बरदस्त वार उनके कंधे पर पड़ा। पीठ पर भी लाठी की चोट पड़ी। वे और स्त्री दोनों डाकुओं से घिर गये। अब डाकुओं ने सवाल किया—"क्या है तुम्हारे पास, निकालो ?"

दुहाई देते हुए स्त्री ने कहा—"अल्ला कसम, हुजूर ये एक रुपिया और यह पूरी-गोश्त ! हम ग़रीब आप लोगों के टुकड़े पर जीने वाली, हमारे पास क्या रखा है ? हजूर, हम यहाँ चौक में रहती हैं, पेशा कर रोटी कमाती हैं। बदमाश हमें यहाँ ला छोड़ गये ! हुजूर हमारे पास बदन के कपड़े के इलावा कुछ नहीं है ?" वह रोने लगी ! ज़ोर से एक थप्पड़ पड़ने की आवाज़ आई ! सुन्न मस्तिष्क से रावत समझ नहीं सके कि यह चोट उनके अपने शरीर पर पड़ी। या स्त्री के शरीर पर परन्तु स्त्री की आवाज़ बन्द हो गई।

रावत ने देखा स्त्री गिर सी पड़ी। डाकुओं ने उसकी बाँहों से चाँदी की ककना-छन्नी खींच लिये। उसके गले और कानों के ज़ेवर भी छीन लिये तब गाली देकर कहा—"चली जा यहाँ से और रास्ते में किसी से बोली तो घर पर आ कर कत्ल करा देंगे ......कहाँ रहती है तू ?" आँसू भरे और भयभीत स्वर से स्त्री ने अपना पता दोहराया—"फुलिया, चावलवाली गली में ?" स्त्री सहमी हुई-सी पूरी-गोश्त की टोकरी उठा उसे सीने से चिपकाये चली गई।

इसके बाद रावत को घेर उनके गालों पर दो-तीन थप्पड़ लगा, डाकुओं ने धमकाया—"खोलो सब कपड़े! नंगा-झोरी दो।" रावत के सब कपड़े उतार लिये गये। जेब में पाये काग़ज़ों को फेंक तीन रुपये साढ़े छः आने ले डाकुओं ने अपनी राह ली। उनका कुर्ता, बण्डी और जूते भी वे लोग ले गये। रह गई केवल एक धोती। वह भी इसलिये कि उसी से रावत के हाथ-पैर बाँध और धोती का बचा छोर उनके मुँह में ठोंस दिया गया था। जाते-जाते एक डाकू ने गाली देकर कहा—"साला चला है, रण्डीबाज़ी करने, जेब में पैसे नहीं।"

बहुत देर उसी अवस्था में पड़े रहने के बाद किसी तरह हाथ छुड़ा, मुख से कपड़ा निकाल और पैर खोल धोती कमर में लपेट रावत वहीं लेट गये। शरीर पर लगी चोटों की पीड़ा से कराह देने को मन मुँह को आ रहा था। परन्तु अब और लुट जाने का भय न था। प्राणों के भय की चिन्ता न कर कांग्रेस के जिस धन की रक्षा के लिये, चतुरता से गोश्त-पूरी की अस्पृश्य टोकरी में उसे डालकर उन्होंने बचाने की चेष्टा की थी, उसे वह निर्लज्ज, पापिन, दुष्टा औरत प्राणों पर आये भय के समय भी न भूली और सीने से चिपटाकर ले गई।

लुट तो वे गये ही। उनके तांई रुपया जैसे दुष्ट डाकुओं के हाथ जाता वैसे ही उस पापिन औरत के हाथ गया। ज़िले की कांग्रेस के सामने वे क्या मुख दिखायेंगे? उनकी बीती पर कोई विश्वास भी क्यों करेगा? उनका मस्तिष्क चक्कर खाने लगा। उन्हें दिखाई देने लगा, उनकी देशसेवा और त्याग अपमान के दलदल में डूब गया। अब किसी को मुँह दिखाना उनके लिये कैसे सम्भव हो सकेगा?

रात के सन्नाटे में गूँजती हुई, मेंढकों की निरंतर टरटराहट और झिल्लियों की झनकार उनके कानों में भर रही थी। आँखों के आगे दिप-दिप करते जुगनू अंधकार में प्रकाश की रेखायें खींचते हुए अंधकारमय शून्य को चित्रित कर रहे थे। ज्यों-ज्यों रात गहरी होकर दूसरा पहर बीतने लगा, मेंढक-झिल्लियों की चिल्लाहट और जुगनू की चमक में अन्तर पड़ने लगा। यह शब्द या प्रकाश आदि-अन्तहीन मेघ में चमक जानेवाली बिजली की भाँति जान पड़ने लगे और उसी ढंग से असम्बद्ध विचार रावत के मन में उठकर रह जाते।

वह दो हज़ार रुपया उस पतित स्त्री की पूरी-गोश्त की टोकरी में चला गया, इस विषय में तो कोई सन्देह न था। क्या उसे समझा-बुझाकर या किसी तरह धमकाकर वह रुपया उससे ले सकना सम्भव होगा? उसे समझाया जाय कि यह रुपया कांग्रेस का है, देश का धन है, धर्मखाते का रुपया है, इसे ले लेना पाप है! इस विचार से रावत को कोई सान्त्वना न हुई। जो औरत टके-टके पर रोटी के टुकड़े के लिये अपना धर्म-ईमान बेचती फिरती है, उस औरत को समझा-बुझाकर, धर्म और कर्तव्य का उपदेश दे, कांग्रेस के दो हज़ार रुपये फेर लेने का विश्वास रावत को केवल आत्म-प्रवंचना जान पड़ने लगी। रुपया भला वह उन्हें क्यों लौटाने लगी! उस पर दबाव या ज़ोर भी वे क्या डाल सकते हैं। निराशा और बेबसी में उनका मन डूबने लगा। उस दुष्टा को भय हो सकता है केवल पुलिस का और पुलिस की सहायता वे कैसे पा सकते हैं?

बहुत देर तक कल्पना-विकल्पना में डूबने और उतराने के बाद उन्हें ख़याल आया, उस औरत से रुपया वसूल किया जा सकता है केवल एक ढंग से! ऐसे कमीने आदमियों पर भय और

लालच के सिवा और कोई बात असर नहीं कर सकती। उन्होंने सोचा, दिन चढ़ते ही चावलवाली गली के मोड़ पर उसके मकान का पता ले, उसे धमकाया जाय कि रुपया दो नहीं तो अभी पुलिस लाकर पकड़वा देंगे कि वह डाकुओं के साथ मिली हुई है, लोगों को धोखा दे लुटवाने के लिये ले जाती है। वह डाकुओं की साझीदार है। आशा की एक किरण उनके मन में जाग उठी ; यदि वे ढंग से उसे डाँटकर दबदबे में ले आये तो कांग्रेस का रुपया वापिस मिलना असम्भव न होगा बल्कि अवश्य वापिस मिल जायगा।

सफलता की आशा की उत्तेजना में अपने ऊपर बीती दुर्घटना भी उन्हें सहसा भूल-सी गई। वे उठकर घाट की सीढ़ियों पर टहलने लगे। वे चाहते थे किसी प्रकार जल्दी सबेरा हो और इससे पहले कि औरत रुपये को इधर-उधर कर पाये वे उसके सिर पर जा पहुँचे। इस चिन्ता से रात का समय काटना उनके लिये भारी हो गया। रात के सन्नाटे में सर-सर करती वायु को चीरकर कुछ-कुछ अन्तर से अनेक घंटों और घड़ियालों के, बीतते समय की सूचना देनेवाले, स्पष्ट-अपस्ट शब्द कानों तक पहुँच रहे थे। उन्हें जान पड़ता था, समय उनके विरुद्ध षड़यंत्र कर रहा है। समय की गति की शिथिलता के कारण वे विवशता में छटपटा कर रह जाते।

रात की गहरी नीरवता और नदी-तट की निर्जनता में जीवन की चहल पहल के चिह्न प्रकट होने लगे। सड़क पर से कोई एक मोटर अपनी दैत्य की-सी आँखों से दूर-दूर तक रोशनी फेंकती हुई निकल गई। उसके बाद इक्के-घोड़े के टाप और पहियों का शब्द कुछ-कुछ देर बाद सड़क से सुनाई देने लगा। पौ फटते-फटते बग़ल में अँगोछा-धोती दबाये, राम

नाम स्मरण करते भक्त लोग सड़क पर नदी स्नान के लिये आते जाते दिखाई देने लगे। रावत के मन में उतावली होने लगी कि वह तुरंत चौक जा, चावलवाली गली में फुलिया का पता लगा, रुआब और धौंस दे दो हज़ार रुपया उससे वापिस ले लें। परन्तु उस भेस में जब कुर्ता-टोपी और जूता तक उनसे छिन चुका था और शरीर पर रात में लगी चोटों के चिह्न मौजूद थे, जनता के बीच जाने का साहस न हो रहा था। यह निरुत्साह और संकोच यहाँ तक बढ़ा कि रावत के मन में तर्क उठने लगा—जो होना था वह तो हो ही चुका अब इस अवस्था में उस ज़लील औरत के यहाँ जा दो हज़ार रुपये का दावा कर अपनी जग हँसाई कराने से क्या लाभ ? यदि वह इनकार कर शोर मचाने लगे तो उनकी इमदाद के लिये वहाँ कौन आयगा ? आश्चर्य नहीं यदि ऊपर से और मार पड़े और लुच्चा-गुण्डा समझ कर लोग उन्हें थाने तक पहुँचा दें। इस तर्क से उनका मन इतना भयभीत हो गया कि घाट से उठ सकना ही कठिन जान पड़ने लगा।

अपने ज़िले में अपने सम्मान और काँग्रेस के प्रति कर्तव्य के ख़याल से वे उठे और राहचलतों से राह पूछते चौक की ओर बढ़े। हुसैनाबाद से चौक और चौक में चावलवाली गली ढूंढ़ते-ढूंढ़ते अच्छी खासी धूप चढ़ आई। चावलवाली गली तक का पता पूछना कठिन न था। परन्तु एक वेश्या का नाम ले उसके घर का पता पूछने में कितनी ही बेर उनका गला आत्मग्लानि से रूँध गया। कर्तव्य के आगे आत्म सम्मान की भी बलि उन्हें चढ़ानी पड़ी। जिस सम्मान की रक्षा के लिये कर्तव्य का पालन करना आवश्यक था वही कर्तव्य उस समय उनके आत्मसम्मान को कुचले दे रहा था।

तंग गली के दोनों ओर धुएँ से काली दुकानें थीं । ऊपर एक जगह फुलिया की कोठरी का पता चला । दिन का पहला पहर चढ़ आने पर भी बाज़ार की जागृति और सक्रियता दिखाई न देती थी । छज्जे पर खुलने वाली कोठड़ियों के दरवाज़े अभी प्रायः बद थे । दुराचार का श्रम रात में जागकर दिन में विश्राम कर रहा था ।

एक कोठड़ी का दरवाज़ा खुलने पर रावत को एक वेश्या की सूरत दिखाई दी । नींद से भरी लाल आँखें अभी ठीक से खुल नहीं पारही थीं । सिर के उलझे बाल चारों ओर बिखरकर उजड़े हुए घोंसले की तरह जान पड़ते थे । वेश्या के गहरे सांवले चेहरे से पाउडर की सफ़ेदी पुँछकर दिन के प्रकाश में अत्यन्त विरूप जान पड़ रही थी । उसके गले में, शरीर की गरमी से झुलसकर, पीले पड़ गये बेले के फूल का हार अब भी मौजूद था । उसकी कलफ़ लगी कुर्ती सोते समय सिकुड़ कर ऊपर सिमिट गई थी, उसी तरह धोती भी अस्त व्यस्त हो रही थी । दृष्टि ऊपर जाने पर नीचे गली में खड़े रावत को उसका शरीर दिखाई दे गया । वेश्या जम्हाई लेती हुई गली में किसी को पुकार रही थी । अपने शरीर के नंगेपन से भी अधिक लज्जा रावत को अनुभव हुई इस स्त्री के छिपे हुए नंगेपन से ।

धुएँ से काले पड़ गये जँगलों पर कहीं-कहीं, न जाने कब से, बेले के दो-चार सूखे हुए हार लटके हुए थे जिनके फूल लाल पीले पड़, सूखकर अधिकांश में झड़ गये थे । अब केवल धागे मात्र जँगले से उलझे रह गये थे । कहीं-कहीं छज्जों पर टूटी हुई चिकें या बारदाने के फटे पर्दे लटके थे । तंग जगह में पान के खाली सूखे दोने सीधे और औंधे पड़े थे । टाँगें टेढ़ी हो गईं लोहे की कुर्सियाँ, बिसाती के सामान की पेटियाँ

और टूटे हुए बान की चारपाइयाँ जिन पर कपड़ा बिछा संध्या समय जँगले पर बेले के नये हार लटका, पान चबाकर कोठरियों की रहनेवाली बैठ कर नीचे आते-जाते लोगों को आकर्षित करने की चेष्टा करती हैं, इस समय उघाड़े और सूने पड़े थे।

दुकान झाड़ने-पोछने में लगे एक पनवाड़ी से पूछकर रावत को फुलिया के चौबारे का पता लगा। उस ज़ीने पर पैर रखते समय उन्हें जान पड़ा, पैरों में मनों बोझ बँध गया है। जान पड़ा, लोगों की दृष्टि उनकी नंगी पीठ पर सैकड़ों बर्छियों की तरह गड़ती जा रही है। रावत धौंकनी की तरह धड़कते हृदय से उस छोटे से ज़ीने पर चढ़े।

किवाड़ भीतर से बंद थे। उन्हें खटखटाना अत्यन्त कठिन काम जान पड़ता था। परन्तु ऐसा किये बिना चारा न था। भीतर से अस्पष्ट सा उत्तर मिला—"कौन हो इस बखत ?"

मुख से कुछ कहने में असमर्थ हो रावत ने फिर किवाड़ खटखटाये। भीतर से आवाज़ आई—"ठहरो न, खोलते तो हैं।" किवाड़ खुले सामने फुलिया दिखाई दी! रात के अँधेरे में देखी सूरत रावत कुछ पहचान नहीं पाये परन्तु स्वर और शरीर का क़द वही था।

कुछ परेशानी के से भाव में एक हाथ से किवाड़ खोल और दूसरा हाथ इस तरह परे हटाये, जैसे वह किसी काम में सना हो, फुलिया ने पूछा—"कहो क्या है ?" जैसा एक रूप रावत ने नीचे गली से ऊपर छज्जे पर देखा था, वैसा ही रूप अब फिर उनके सामने था। सलवटें पड़ी सिकुड़ी धोती, खुले और उलझे अस्त-व्यस्त बाल! सामने खड़े व्यक्ति को ठीक से न पहचान फुलिया ने अपना प्रश्न दोहराया—"क्या है ?"

डूबते हुए साहस को सम्भालकर रावत ने उत्तर दिया—

"हम हैं ? रात में घाट पर थे।"—फुलिया ने आँखें फैलाकर देखा और सहानुभूति के स्वर में बोली—"तो क्या कपड़े भी डाकुओं ने छीन लिये !" अपनी खाली बाँहें, गला और कान दिखा आतुर स्वर में उसने कहा—"देखो, हमारी भी सब चीज़ बस्त छीन ली। बीस रुपये से बढ़ती की चाँदी रही।"

साहसकर रावत कोठरी के भीतर जा एक ओर खड़े हो गये। रात की पूरी गोस्त की टोकरी, कोठड़ी के बीचो-बीच चटाई पर रक्खी थी, पास ही टीन का टोंटोदार लोटा था। किवाड़ खोलने से पहले फुलिया शायद रात का बचा पूरी-गोश्त खा रही थी। उसी में उसका हाथ सना था। खाने की चीज़ घर में रहते, दिन का सबसे ज़रूरी काम फुलिया के लिये खा लेना ही था। फुलिया के व्यवहार से रावत का साहस बढ़ा उन्होंने कहा—"खाने की चीज़ की तुम्हारी टोकरी में हमारा रुपया आ गया है .....।"

फुलिया ने कहा—"हमें क्या मालूम"...फुलिया को अपनी बात काटते देख रावत सहम गये। परन्तु फुलिया कहती गई—"हम तो टोकरी लिये चली आईं। रात में हमने कुछ देखा नहीं। अभी हमने कहा—खाने की चीज़ है, ख़राब जायगी, लाओ नास्ता कर लें तो टोकरी में देखा नोट पड़े हैं...... ।"

फुलिया के टोकरी में नोट होना क़बूलने से रावत ने आश्वासन की गहरी साँस ले उसकी बात टोककर कहा—"हमारे हैं !" फुलिया को रुआब और धौंस देकर उससे रुपया निकलवाने का इरादा दैन्य में बदल गया। बेबसी के से स्वर में बोले—"भगवान की कसम खाकर कहते हैं, रात जब डाकू आये हमने नोट तुम्हारी टोकरी में डाल दिये कि बच जायँ। धर्म-ईमान से कहते हैं, नोट हमारे नहीं, किसी और के हैं। रुपया अगर हम

ठीक नहीं पहुँचा पाये तो हमारी जिन्दगी तबाह हो जायगी।"

चटाई पर बैठते हुए फुलिया ने कहा—"नोट लिफ़ाफ़े में रहे। हमने समझा, वही साले गुण्डे भूल गये, अब रोते आयँगे। पाँच बीसे नोट दस रुपिया के हैं और दस बड़े-बड़े हैं। चाहे सौ रुपिया के नोट होयँ! भैया, हमने लिफ़ाफ़ा उठा के ताक़ में रख दिया। जिसके हों ले ले। भैया, हम किसी की जमा में हाथ नहीं लगाते। हम कोई चोर डाकू थोड़े ही हैं। अपनी कमाई का रूखा-सूखा, अल्ला का दिया, सो तो खा नहीं पाते, चोरी करेंगे तो कहाँ जाँयगे... हाँ तुम जानो!"

निराश्रय हो प्रवाह में बहे जाते रावत जैसे सहसा किनारे आ लगे। फुलिया के प्रति उनकी घृणा पल भरमें उड़ गई। फर्श पर बिछी चटाई के कोने पर निस्संकोच बैठ, हाथ उठाकर उन्होंने कहा—"भगवान जाने रुपिया धर्म-खाते का, कांग्रेस का है। हम पहुँचाने भर जा रहे थे। ठीक जगह पहुँचा नहीं पाये। जैसे तुमने बताये ठीक वैसे ही नोट थे। और देखो बीबी, नोट टोकरी में हमने न छोड़े होते तो हमें मालूम कैसे होता?"

उपेक्षा से हाथ हिला फुलिया ने कहा—"तो भैया उठा लो, उस ताक में धरे हैं। लेकिन हम कहे देती हैं, हमारी फजीहत न हो कि वो साले गुण्डे आके हमें दिक़ करें। हमारा तो जो गया सो गया पर हम किसी की दौलत छूयें तो हमारे कोढ़ फूटे! अल्ला की दी जवानी है तो सब कुछ है!"

अपनी जगह से लपक नोटों का लिफ़ाफ़ा उठा रावत अभी निश्चय की साँस नहीं ले पाये थे कि फुलिया की बात ने उनके हृदय में फिर से घृणा की बर्छी-सी मार दी......"अल्ला की दी जवानी है तो सब कुछ है।"

फुलिया के बेरौनक चेहरे की ओर देख वे सोचने लगे,

जवानी को टके-टके बेचने वाली, अपने शरीर का सौदा करने वाली यह औरत, बासी गोश्त-पूरी को देख अपने को न सम्भाल सकने वाली यह औरत, दो हज़ार को कैसे ठुकरा दे रही है......इसके भी धर्म है, ईमान है, इज्ज़त है ? फुलिया के चेहरे पर उन्हें एक ज्योति दिखाई देने लगी जैसे कोई परम त्यागी, सतवंती देवी उनके सामने बैठी हो !

टोकरी से बासी पूरी का कौर मुँह में भरते हुए फुलिया फिर कहने लगी—"बन्दा अपनी मेहनत की कमाई पर सब्र करे ! दूसरे की कमाई पर ललचाने से कुछ थोड़े ही होता है। हमारी चीज़ बस्त बीस से कम की न थी पर क्या; हाथ पैर हैं तो अल्ला फिर देगा !"

रावत कुछ देर सोचते रहे । लिफ़ाफ़े का मुँह खोल दस-दस के दो नोट निकाल उन्होंने कहा—"यह तुम्हारे नुक़सान के लिये ! बस चलता तो यह दो हज़ार तुम्हारे क़दमों पर रख देता......पर रुपया अपना नहीं, दूसरे का है ।"

कौर निगल घृणा से मुँह फिरा फुलिया ने कहा—"वाह रे..., हम कोई पीर-फ़क़ीर हैं क्या ? जो हाथ फैलाकर ख़ैरात लेंगे ! हमारी मेहनत का जो कुछ अल्ला देगा, किसी की खिजमत करेंगे तो हलाल के टुकड़े पर हमारा हक़ होगा, ऐसे गये थोड़े हैं कि भीख लें..........।"

रावत के पैरों तले की ज़मीन निकल गई । घृणा की इस फटकार से उनका चेहरा उतर गया । नोट लिफ़ाफ़े में रख वह चुपचाप ज़ीना उतरने लगे । धुँधली पड़ गई आँखों के कारण जान पड़ता था गिर पड़ेंगे । दो हज़ार रुपये के कारण अपनी प्रतिष्ठा, ईमानदारी और विश्वास खो जाने की जो चोट

लगी थी, उससे कहीं भयंकर चोट लगी फुलिया के बीस रुपये ठुकरा देने से। भीख वह नहीं लेती। केवल ख़िदमत कर हलाल का टुकड़ा खाती है।

हलाल का वह टुकड़ा......यह कैसा हलाल है, सोचकर रावत के शरीर के रोम खड़े हो गये और आँखें बार-बार धुँधली होने लगीं।

ज़ीने से उतर रावत चिन्ता में कुछ भूल से गये। परन्तु उसी समय अनाचार के उस स्थान पर खड़े दिखाई देने के विचार की लज्जा ने उन्हें सुध दिला दी।

लम्बे क़दम रखते हुए वे एक ओर बढ़ चले!

मनुष्य ?

घटनाओं की सरसता प्रायः उनमें छिपे विद्रूप में ही रहती है। पर दुःख यह है कि दूसरे पर विद्रूप कर अपने आह्लाद में मनुष्य निठुर हो जाता है और यदि वह निठुर न होकर सहानुभूति की भावना को बनाये रख सके तो उसी में उसका मनुष्यत्व है।

हावड़ा स्टेशन से कलकत्ते के मुफ़स्सिल के लिये सुबह शाम थोड़े-थोड़े समय पर ट्रेनें आया-जाया करती हैं। ऐसी ही एक 'लोकल के एक बिलकुल खाली डिब्बे के कोने में अकेला बैठा मैं गाड़ी की चाल की ताल पर गुनगुनाता चला जा रहा था।

बँगला कविता में वर्णित स्निग्ध मेघों से छाये आकाश के नीचे बंगाल की शस्य श्यामला भूमि मन्द वायु में लहरा रही थी। नारियल के पेड़ों के झुरमुटों के नीचे पोखरों से जल लेने आती-जाती घुटनों से ऊँची धोती में लिपटीं, बगल में घड़े और सिर पर केशों का बोझ उठाये विलम्बित गति से चलने वाली, कृष्ण वर्ण बंगाली ललनाओं की ओर अधमुँदी आँखों से देखते हुए नयी सीखी बँगला भाषा की एक कविता, कवि रवीन्द्र की 'मानश-शुन्दरी', बँगला उच्चारण शुद्ध करने के लिए गुनगुना रहा था। भय और आशंका से भरे फ़रारी के उस जीवन की उपेक्षा कर, विश्रान्ति और आलस्य अनुभव करने की चेष्टा कर रहा था।

बेलूरमठ से एक दो स्टेशन परे ही गाड़ी थमी। डिब्बे का दरवाज़ा खुलने का शब्द सुनायी दिया। अभ्यास के अनुसार सतर्कता से देखा, एक युवक प्रसन्नता और उमंग से चमकते हुए चेहरे से भीतर आया। हाथ बढ़ाकर उसने अपने पीछे एक युवती को गाड़ी पर चढ़ा लिया। उसकी आँखों और ओठों से हँसी फूटी पड़ती थी। कवि रवीन्द्र और शरत बाबू के उपन्यासों की अवगुण्ठिता, लज्जास्तब्ध बंग वधू नहीं, किलकती हुई प्रेमिका! जिस डिब्बे को बिलकुल सूना समझ खुशी से वे भीतर चले आये थे, उसके एक कोने में मुझे विराजमान देख वे कुछ हत-प्रतिभ हुए ज़रूर परन्तु दूसरे ही क्षण—एह...खोट्टा बेटा..." (आह, हिन्दुस्तानी बन्दर!) कह वे पास-पास बैठ गये।

'हिन्दुस्तानी बन्दर' का खिताब मेरी उस अवस्था के लिये बहुत अनुचित भी नहीं था। मैली धोती घुटनों तक, कलीदार कुरता चेहरे पर चार दिन की हजामत और लम्बी-लम्बी मूछें। वही सूरत जिससे बनारस और जौनपुर ज़िले के जूट और दूसरी मिलों में काम करने वाले कुली पहचाने जाते हैं।

युवक और युवती में बातचीत शुरू हुई। पहिले बहुत धीमे और दबे हुये स्वर में। जितनी बंगला समझ सकता था उससे समझ लिया, नव-दम्पति हैं। कलकत्ते से किसी पारिवारिक समारोह में सम्मिलित होने मुफ़स्सिल गये थे, लौट रहे हैं।

युवती सम्बन्धियों की क्षुद्रता और संकीर्णता की शिकायत कर रही थी। बड़ी-बड़ी काली आँखें घुमा-फिरा कर और कोमल हाथों के संकेत से बात-चीत करने का उसका ढंग विशेष आकर्षक था। परन्तु उन्माद भरी आँखों वाला वह युवक उस शिकायत और शिक़वे के अतिरिक्त कुछ और चाहता था। अपनी बांई बाँह युवती की गर्दन के पीछे रखते हुए उसने कहा—"छाड़ ए शब,

प्रेमेर कथा बला जाक' (हटाओ इस झंझट को, कोई प्यार की बात करो !

भद्रता हो या अभद्रता, आँख के कोने से उस ओर देखे बिना रह न सका। उनकी उपस्थिति से मेरा बँगला गाना जो बन्द हो गया था सो समय काटने के लिये उस ओर कनखियों से देखे बिना चारा भी नहीं था।

प्रणय-स्निग्ध नेत्रों को ऊपर उठा युवती ने उत्तर दिया—"जा बोलते बलो ताई बँली" (जो बोलो वही कहूँ)।

कुछ क्षण के लिये वे दोनों चुप रहे। उसके बाद युवक का द्रवित और व्याकुल सा स्वर सुनाई दिया—"मन चाइतेछे तोर चुमुखेते···" (मन चाहता है तुम्हें चूमलूँ !)

स्निग्ध पुलकित स्वर में उत्तर मिला—"के बारन करेछे"—? (रोकता कौन है ?)

"एई जे खोट्टा बेटा..." (यह बन्दर जो बैठा है)

"एइ बेटा छातू खोर कि जाने, अमि घोमटा टेने निछि" (यह बेवकूफ़ सत्तू खोर क्या जाने,...घूँघट किये लेती हूँ...?)

क्रोध नहीं मालूम हुआ। हँसी अलबत्ता ज़रूर आना चाहती थी ! दूर हुगली के गन्दे जल पर डगमगाती छोटी-छोटी नावों की ओर दृष्टि कर होंठ दबा लिये। अपनी पीठ पीछे होते व्यापार के ख़याल से कौतूहल अवश्य हो रहा था। यह भी ख़याल आया कि बेसब्री और निर्लज्जता की भी तो सीमा होनी चाहिये ?

परन्तु बन्दर की उपस्थिति से लज्जा कैसी ? आँखों के सामने कल्पना नाचने लगी......किसकी सुहाग-शैया के कमरे में दिवारों पर छिपकली मौजूद नहीं रहती ? और किन चुम्बनों की गवाही देने का मौक़ा पतंगों और मक्खियों को नहीं रहता ?

और फिर ख़याल आया, पर्दे में रहनेवाली वास्तविक दुनिया को वही देख पाते हैं जो उपेक्षित रहते हैं। मिसाल के तौर पर महामान्य कलक्टर और कमिश्नर साहब के रोबीले जीवन के पीछे छिपी रहने वाली मियाँ-बीवी की चख़-चख़ को घरेलू जीवों की श्रेणी में गिने जाने वाले खानसामा और बेहरा ही तो देख पाता है न ?

और—आँखों के सामने वही हुगली का गँदला जल, शस्य-श्यामला भूमि और वही घुटनों तक मोटी धोती में लिपटी कृष्णवर्ण बंगला रमणियाँ; दूर पंजाब में रहते समय जिनकी भावुकता और कोमलता के शब्द-चित्रों से कल्पना बावली हो उठती थीं, अभी कुछ ही क्षण पहले कितनी अरुचिकर जान पड़ रही थी ? उन्हीं में से एक, यहाँ कुछ हाथ दूर, मेरी पीठ पीछे मानस सुन्दरी उर्वशी की सम्पूर्ण शक्ति लिये, मोह और प्रेम के जगत का केन्द्र बन रही है......।

भूलकर, बेसुध होकर गुनगुनाने लगा वही जो पहले गुनगुना रहा था। अपने कर्कश और अप्रिय स्वर का भी ध्यान न रहा। पहले धीमे और बाद में सुने जाने योग्य स्वर में गाने लगा—

हाशिते छे धीरे
चाहि मोर मुखे उगो रहस्य मधुरा !
कि बोलिते चाओ मोरे प्रणय विधुरा......×

और जब सहसा खयाल आने पर घूम कर देखा, दोनों

× क्यों हँस देती हो धीमे से—
मधुर रहस्य की खान, तुम मेरी ओर देखकर ?
हे प्रणय विकल, कहो न, क्या कहना चाहती हो......?

अत्यन्त संकुचित और भयभीत से एक दूसरे से अलग-अलग बैठे थे। अपनी मूर्खता पर बहुत खेद हुआ। व्यर्थ में किसी की शान्ति में व्याघात क्यों डाला। पर वह तो हो चुका था इसलिये खिड़की से सिर बाहर निकाल बैठ जाने के सिवा और चारा न था।

कुछ ही क्षण में गाड़ी बेलूरमठ को पार कर कारखानों के बीच से जा रही थी। समीप ही कुछ आहट पा चौंककर देखा—वह युवक अनुनय भरी दृष्टि लिये बिलकुल मेरे ही समीप आ बैठा है।

"क्षमा कीजियेगा, बहुत अभद्रता होगयी,...आप कुछ ख़याल न कीजियेगा...समझा नहीं था आप भी बंगाली भद्रजन है।"—उसने विनीत स्वर में कहा।

—"अपराध तो मेरा ही है"...'बंगला में उत्तर दिया परन्तु ठीक बंगला बोलने में अड़चन पा अंगरेजी में कहा" I,ll be rather comfortable if you ignore me, "मेरा ख़याल न कीजिये...तभी मैं अधिक सुखी होऊँगा।"

और मन में ख़याल आया—मनुष्य क्या है...?

बदनाम १२

हम सब लोगों के विवाह हो गये हैं। कुछ एक के घर, भगवान की कृपा से, गोद भी भर चुकी है। कल्पना और भावना के क्षेत्र से दूर हट हम भद्र-गृहस्थी के जीवन की गम्भीरता और वास्तविकताओं के चौखटे में बँध स्थिर हो गये हैं। प्रेम-तत्व की व्याख्या समाप्त हो चुकी है। सड़क पर चलते समय कवियों की भावपूर्ण कवितायें और दर्दभरी गज़लें गाना छूट चुका है। अब हम ज़िक्र करते हैं, दफ्तर के साहब के मिजाज़ का, तनख़ाह में तरक्की की आशा का, सौदे के भाव का या किसी की सगाई-ब्याह का।

विवाह नहीं हुआ है तो केवल......नाम उसका मैं लूँगा। पीठ पीछे किसी का नाम ले, भेद की बात कहना भद्रता नहीं। वह अब तक भी प्रेम-तत्व का चर्चा करता था। स्थूल शरीर से परे, भावना-मूल प्रेम की व्याख्या करता था। उसका कहना था—प्रेम सृष्टि की परिचालक शक्ति (Dynamic Force) है। वह जीवन की गति है और प्रेरणा है। हम लोगों के विवाह और गृहस्थी की संकुचित सीमाओं से घिरे जीवनों की ओर संकेत कर वह विरक्ति से कहता—"प्रेम गति मान और निर्बाध भावना है। उस पर सीमा और बन्धन लगाना, उसे निस्सत्व

और निर्मल कर देना है। वह जीवन के उपवन की मलय पवन है। विवाह की चहारदीवारी खड़ी कर, उस पर रुकावटें लगाना उसे निस्सार कर देना है। उन्मुक्त जलप्रवाह को पोखर में बन्द कर कान्तिहीन कर देना है।"

वह कहता—"प्रेम की शक्ति जीवन में तृप्ति की चाह है और कामना उसका रूप है। प्रेम और जीवन की गति के विषय को ले वह कविता करता और गद्य-काव्य लिखता। दूसरे लेखकों और कवियों के भाव की व्याख्या और विश्लेषण करता। काव्य के मर्म को अपनी भावना में ग्रहणकर दीर्घ निश्वास ले वह अपनी नोट बुक निकालकर हमें सुनाता:—

"हृदय पीर भरा, मन अधीर, भरा भाव गम्भीर...! आदि आदि।

उसकी यह रचनायें पुस्तक रूप से या मासिक पत्रिकाओं में कभी नहीं छपीं परन्तु हम लोगों को विश्वास था कि वह प्रतिभासम्पन्न और उदीयमान है, शीघ्र ही साहित्य-गगन में उसकी प्रतिभा-छटा फैल जायगी।

पुराने परिचय के आधार पर हम सब उसका विश्वास करते थे। हम लोगों की गृहस्थियों में उसके आने-जाने के विषय में कोई संकोच या पर्दा न था। ड्योढ़ी में मामूली खांसकर, जब चाहे, वह आ-जा सकता था। हमारा विचार था—भावना और कल्पना में तृप्ति और संतोष की खोज की वृत्ति के कारण वह साधारण से भिन्न और ऊँचा है।

लेकिन इधर कुछ दिन से उसके तौर बदलते दिखाई देने लगे। हमारे दफ़्तर के बराम्दे में एक काला बोर्ड लटका है। दफ़्तर के पते पर आये हम लोगों के पत्र वहाँ अटका दिए जाते हैं। पत्नी के माय के गये रहने पर प्रत्येक मंगल और शनिवार को पत्र की आशा में उस बोर्ड पर दृष्टि दौड़ानी होती थी।

ऐसे ही एक दिन बोर्ड पर अपने नाम का पत्र ढूंढ़ते समय साथी शर्मा ने मेरे कोट की आस्तीन खींच, बोर्ड के तारों में अटके एक पत्र की ओर संकेत किया। गुलाबी रंग का एक लिफ़ाफ़ा था जैसे कि प्रेमियों में, या विवाह के पश्चात् कुछ दिन तक नव-दम्पति में, लिखे जाते हैं। लिफ़ाफ़े के कोने पर "भुलाना-ना" × के फूलों का चित्र बना था। लिफ़ाफ़े की कपड़े की बुनावट की सी (Linen fihiSh) ज़िल्द से कुछ हल्की-हल्की महक सी आ रही थी।

रहस्य के अभिप्राय से मेरा हाथ दबाते हुए शर्मा ने कहा—"देखा !" देखा—लिफ़ाफ़े पर नाम लिखा था 'उसी' का। ध्यान से देखने पर जान पड़ा—लिखावट किसी स्त्री के हाथ की है। शर्मा ने कान में बताया—"ऐसे लिफ़ाफ़े कई आ चुके हैं।"

तब से हम उसके नाम से आने वाले रंगीन लिफ़ाफ़ों की ताक में सतर्क रहने लगे। ऐसे लिफ़ाफ़े आने पर कनखियों से मुस्करा-कर हम एक दूसरे को दिखाते !

कुछ दिन बाद सिंह ने बड़े मज़े की बात सुनाई। सिंह ने कसम खाकर कहा, चूड़ियों की एक दूकान पर 'उसे' चूड़ियाँ ख़रीदते कुछ मित्रों ने अपनी आँखों देखा और पूछा तो वह झेंप कर कहने लगा—"ऐसे ही किसी सम्बन्धी ने मँगवाई हैं।"

इसके बाद एक दिन दफ्तर के बराम्दे में खड़ी रहने वाली उसकी साइकिल के पीछे सामान बाँधने की जगह, खाकी काग़ज़ का एक पार्सल दिखाई दिया। आहिस्ता से पार्सल के कोने उखाड़ कर देखा। उसमें दिखाई दीं; स्त्रियों के मसरफ़ की चीजें, चोटी बाँधने के फीते, जनाने रूमाल, कुछ लैस आदि आदि !

× Forget me not.

उसके इस प्रकार की चीज़ें खरीदने और लिये फिरने की ख़बर और भी अनेक बेर मिली। हम सद्-गृहस्थ लोगों के हृदय उसके प्रति घृणा और ग्लानि से भर गये। स्पष्ट कुछ न कहकर हम लोग उससे कतराने लगे। जिस आदमी के घर स्त्री नहीं, जो अकेले रहकर जीवन व्यतीत करता है, स्त्रियों की लिखावट से फूलदार लिफ़ाफ़ों में उसे पत्र आने की कौन वजह हो सकती है? स्त्रियों के उपयोग की वस्तुओं से उसे क्या प्रयोजन? यह सब देखकर सन्देह न हो तो क्या हो? भद्र गृहस्थी के यहाँ ऐसे आदमी का आना-जाना कैसे निरापद हो सकता है? हम लोग उससे बचने लगे। कभी अपने घर की चौखट पर उसके आकर खाँसने से हम तुरन्त लपककर उससे बातचीत करते हुए बाहर की ओर चल देते।

× × ×

बसंत पंचमी के दिन प्रातः का समय मेले में बीत गया। सूर्यास्त से कुछ पहले ध्यान आया, छुट्टी का दिन है, दो-एक मित्रों से मिल लिया जाय। दोमंज़िल के बराम्दे में खड़ा इस विचार को कार्य रूप में लाने का निश्चय कर ही रहा था कि देखता हूँ—गली में दाईं ओर से 'वह' साइकिल पर चला आ रहा है। साइकिल को मकान की कुर्सी की सीढ़ी से टिका वह ज़ीने पर धड़धड़ाता ऊपर आ पहुँचा।

"बसंत मुबारक"—उसने कहा और पूछा—"बसंत कैसे मनाई?" "ऐसे ही कुछ ख़ास नहीं? कहो कैसे आना हुआ?" —उत्तर में प्रश्न किया।

"यों ही, तुमसे मिलने चला आया!" दो-एक मित्रों के नाम ले उसने कहा—"वे लोग तो मिल गये थे। सोचा, तुम्हारे घर ही चलूँ......कुछ देर बैठेंगे!"—उसने उत्तर दिया।

उसकी इस बेतकल्लुफ़ी के बाद बराम्दे से ही उसे टाल देने का मौक़ा न रहा। विवश भीतर से कुर्सी खींचकर बाहर बराम्दे में ला रहा था कि उसने रोका—"क्यों तकलीफ़ कर रहे हो ? ऐसी गरमी तो है नहीं !"

गरमी क्या बल्कि अच्छी ख़ासी सर्दी थी। इसलिये कहा—"नहीं, यहाँ बराम्दे में अच्छा मालूम होगा। देखो न, वृक्षों की चोटियों पर अस्त होते हुए सूर्य की रंगीन किरणें .....!"

काव्य और सौन्दर्य के चर्चा से उसकी आँखें चढ़ गईं। "इन आती-जाती रंगीनियों में क्या रखा है।"—उसने कहा—"रंग प्रेम का; जो कभी न उतरे !"

दूसरी कुर्सी लेने भीतर गया तो दरवाज़े की ओट से संकेत कर पत्नी ने बुलाया और धीमे स्वर में पूछा—"क्या......हैं ?' —उसका स्वर भीतर सुनाई दे गया था—तो भीतर ही क्यों नहीं बुला लेते ? खाने के लिये कुछ लाऊँ ?"

उसे समझाया—रहने दो ऐसे ही और किवाँड़े मूँदता हुआ बाहर चला आया। इतने में उसने गुनगुनाना आरम्भ कर दिया था:—

"आई न बहार खिजाँ ही सही,
उजड़े दिल में अरमाँ ही सही।......"

मुझे बैठते देख उसने पूछा—"भाभी कहाँ हैं ?"

"यहीं पड़ोस में गई हैं...उसकी कोई सहेली बीमार है। कुछ देर में लौटेंगी।"

अख़बार के काग़ज़ में लिपटे उसकी बग़ल में दबे पैकेट से बसंती रँगी चिकन की महीन साड़ी का कोना झलक रहा था। उस ओर स्वाभाविक ही कौतूहल हुआ। संकेत कर पूछा—"यह क्या ; शाम के वक्त पगड़ी रँगाई है ?"

पैकेट को बग़ल में और अधिक सँभालते हुए उसने कुछ झेंप के स्वर में कहा—"नहीं तो, किसी दूसरे के लिये है और फिर "बसंत के प्रभात में कोकिल की पहली कूक !" पर लिखी अपनी नई कविता दो बेर सुना और प्रेम और सन्तोष की विषमता का ज़िक्र करता हुआ वह सूर्यास्त के बाद तक बैठा रहा।

× × ×

उस दिन किसी पर्व की छुट्टी के कारण दफ़्तर बन्द था। इकट्ठ हो गये पिछले काम का बोझ हल्का कर पाने के लिये मैं दफ़्तर में अकेला बैठा काम कर रहा था।

चपरासी एक तार लाया। तार पर उसका ही नाम था। सोचा, कोई ज़रूरी बात होने से उसे तुरंत ही ख़बर देना ठीक होगा वर्ना कल सुबह तक सही। तार खोल डाला। तार आया था, मुरादाबाद से, उसके चाचा का कि 'देहरा ऐक्सप्रेस' में आगे जा रहे हैं, स्टेशन पर ज़रूर मिलो।

चार बज चुका था और ऐक्सप्रेस स्टेशन पर पाँच बजे पहुँच जाती थी। साइकिल ले उसके मकान की ओर चला। नीचे बाज़ार से कई आवाज़ें देने पर उसने खिड़की में से झाँक कर कहा—"ऊपर आ जाओ न।"

तार का काग़ज़ उसे दिखा तुरन्त नीचे चले आने के लिये कहा। तार देख वह घबराया। अपा ही साइकिल पर उसे तुरंत स्टेशन पहुँच जाने के लिये दे, मैं ज़ीना चढ़ उसके कमरे में चला गया।

कमरे में बग़ल की खिड़की के समीप छोटी आराम-कुर्सी के सामने तिपाई पर एक आधा लिखा पत्र पैड में लगा हुआ था और खुला कलम पैड के साथ रखा था। समझा, मेरे पहुँचने से पहले वह पत्र ही लिख रहा होगा। यों ही उस पत्र

के सिरे पर नज़र गई। सम्बोधन के स्थान पर लिखा था—"प्राणधन !" विस्मय से पत्र को पढ़ डाला। पत्र स्त्रीलिंग की क्रियाओं में लिखा गया था और अभी अधूरा था। अधीर प्रणय की व्याकुलता उससे झर रही थी। पत्र की लिखावट भी स्त्रियों के से हस्ताक्षर में थी। तो फिर यह पत्र यहाँ कैसे ?......खुले हुए क़लम से तो जान पड़ा, पत्र अभी लिखा ही जा रहा था।

तिपाई के समीप फ़र्श पर चमड़े का एक छोटा-सा बक्स पड़ा था खुला। बक्स में वस्तुओं के अद्भुत संग्रह से और भी विस्मय हुआ। स्त्रियों के उपयोग की शौक़ीनी की छोटी-मोटी अनेक चीज़ें जैसे बालों के काँटे, नाख़ून का पालिश, फ़ीते, रूमाल इत्यादि अनेक चीज़ें उसमें थीं। वह चिकन की बसंती साड़ी भी एक ओर लगी थी। फूलदार गुलाबी लिफाफ़े, जिन्हें दफ़्तर में चिट्ठियों के बोर्ड पर देखा था, उसका नाम पता लिखे अनेक पड़े थे और प्रायः आधा पैकेट वैसे ही नये लिफाफ़ों का भी रक्खा था।

विस्मय और कौतूहल बढ़ा—एक लिफ़ाफ़ा खोल पत्र देखा। पत्र की भाषा स्त्रीलिंग वाचक थी। विषय भी वही, प्रणय के आदान-प्रदान का था। आँखों के पाँवड़े बिछा राह तकने की बातें प्रेमिका के मुख से......लिखावट सभी पत्रों की बहुत कुछ समान-सी थी परन्तु यह भी जान पड़ता था कि बड़े यत्न से हस्ताक्षर बदलकर लिखा गया है। एक ही अक्षर अनेक स्थानों में अनेक प्रकार से लिखा गया था। स्याही भी ठीक वही थी जो पास पड़े क़लम में जान पड़ी।

शंका हुई, इन पत्रों की लेखिका प्रणयिनी कौन है ? क्या यह सब पत्र इसी तिपाई पर लिखे गये हैं। इन पत्रों के लिखने का प्रयोजन ?......और याद आई, भावना में उसकी प्रेम की

खोज......! मनुष्य हृदय की प्यार की भूख ?......

बैठा सोचता रहा। समय बीतता जान न पड़ा।

ज़ीने में कदमों की धड़धड़ाहट सुन ध्यान आया। वह मेरे सामने खड़ा कह रहा था—"बहुत अच्छा हुआ कि समय पर पहुँच गया।......तुम क्या करते रहे ?"

कहते बन न पड़ता था। बहुत यत्न से उसके भावों का ध्यान रखते हुए कहा—"भाई, बड़ी भूल हुई। तुम्हारे इन पत्रों और यह ऊटपटाँग वस्तुयें इकट्ठे करते रहने के कारण हम लोगों को कितना भ्रम हुआ और उसके कारण तुम्हारी व्यर्थ निंदा...।"

उसका चेहरा सहसा लाल हो गया। मेरी ओर घूरकर उसने कहा—"तुम क्या समझते हो यह सब झूठ है ?...... मुझे प्रेम करनेवाला कोई नहीं ?"

कुछ न समझा......हैरान था। यत्न से कमाई हुई उस बदनामी के खो जाने की आशंका से वह कैसा क्षुब्ध हो गया...।

अपनी चीज़ १३

उसका नाम था आलोक। परन्तु मेजर चौहान पुकारते थे केवल 'आलो'!

मेजर चौहान का मन था चकवे की तरह। आलो के केन्द्र से फैलने वाले सौष्ठव, स्निग्धता और माधुर्य के आभा-क्षेत्र की सीमा से बाहर पर फड़फड़ाने की उसे न कामना थी, न कल्पना। अतृप्त अभिलाषा से, तृप्ति के उसी आलोक-चक्र में, उसका मन परम संतोष के आश्वासन में गद्गद उतराता रहता।

कलाकार की सजीव कल्पना जैसे आलो के क्षीण कटि, लम्बे छरहरे शरीर, स्निग्ध गंदमी रंग, भावपूर्ण विशाल नेत्र, आजानु-दीर्घ केशों और पल्लव ओष्ठों से स्फूर्ति की किरणें बिखरती रहतीं और मेजर का मन-चकोर उनकी सुषमा से तृप्त बना रहता। यह असीम तृप्ति मेजर के मन में एक मधुर तृष्णा जगाये रहती। तृप्ति और तृष्णा का वह अन्योन्याश्रय सम्बन्ध, जो जीवन के उत्साह की शृंखला है। आलो के आह्लाद-दीप्त नेत्रों और स्मित होठों से बिखरने वाले फूलों का सुवास मेजर की आत्मा का भोजन था......उसी प्रकार जैसे धन को व्यय न करने पर उसका स्वामित्व भी तृप्ति देता है।

स्वामी होने की उदारता में मेजर आलो के दास थे......

दास होकर पुजारी और उपासक। वे आलो की प्रतिमा के बाहन थे और इसका उन्हें गौरव। ऐसे प्रेम में बन्धन का क्या काम ? जैसे चुम्बक से चिपके लोहे को बाँधने की ज़रूरत नहीं पड़ती। जहाँ आलो का साथ जाना सम्भव था, वहाँ अकेले जाना मेजर के लिये असम्भव। और वैसा ही आलो के प्रेम का प्रतिदान भी निस्सीम! शंका और आशंका के लिये उसमें स्थान न था।

× × ×

कर्नल कौशिव अफगान युद्ध से विशेष प्रतिष्ठा सहित लौटे थे। उनका और मेजर का पुराना साथ था। पुरानी मित्रता और बहुत गहरी। दोनों ही के लिये लगभग एक दूसरे की मित्रता काफ़ी थी; इतना परस्पर भरोसा था। कर्नल कौशिव ने मेजर और आलो की संगति में स्त्री-रहित सज्जन के संकोच से प्रवेश किया। उनका वह संकोच मेजर दम्पति की सहृदयता के सम्मुख टिक न सका। तीनों निस्संकोच रूप से एक हो गये। पश्चिम के बराम्दे में एक साथ चाय पीने बैठने पर अँधेरा होकर भोजन का समय हो जाता और फिर आधी रात बीत जाती। इस गोष्ठी में युद्ध कौशल, विदेश-भ्रमण और मनोविज्ञान, सभी विषयों का चर्चा घण्टों चलता।

आलो को जान पड़ा—पति के पूर्ण संतोष और सुख के लिये कर्नल का सत्संग आवश्यक है। और फिर मेजर के न रहने पर भी आलो को कर्नल की याद आ जाती। वीरता और तीक्ष्ण बुद्धि के साथ ही कर्नल की भावुकता का मेल एक अद्भुत रस पैदा कर देता जो केवल कर्नल में ही था। आलो मेजर की तो थी ही, कर्नल पर वह करने लगी श्रद्धा।

एक दिन आलो को मालूम हुआ, कर्नल उसका विशेष आदर

करता है और कर्नल की भावुकता का कारण एक सीमा तक वह स्वयम् भी है। आलो के स्नायु झनझना उठे। उसका मन चाहता था, वह आँखें मूँदे पलंग पर पड़ी रहे। एक शैथिल्य ने रक्त में प्रवेश कर मन और शरीर को कुछ बोझल-सा बना दिया जैसे अकस्मात् भीतर कुछ समा गया हो! इच्छा का कोई तीखापन उसे व्याकुल नहीं कर रहा था। केवल यही ख़याल था, वे कितने भले हैं; वे कभी-कभी उदास हो जाते हैं...क्यों?

एक दिन बँगले के पिछवाड़े लान में बैठ चाय पीने के बाद मेजर को जल्दी ही कहीं जाना पड़ गया। कर्नल बैठा रहा। बातचीत कुछ विशेष हो नहीं रही थी। कर्नल की आँखें आकाश में उड़ते मेघों के टुकड़ों की ओर थीं और आलो मैशीन से कटी घास में माली की बेपरवाही के कारण फूट आये कास के से बेरौनक फूलों की ओर देख रही थी परन्तु मन उन दोनों के टटोल रहे थे एक दूसरे के मन को! आलो के मन में कर्नल के अनमने ढंग के प्रति, समवेदना के कारण एक टीस-सी उठ जाती।

अपनी कोमल उँगली के नाखून से कर्नल की बेत से बुनी कुर्सी के हत्थे को खोंट कर आलो ने उलहाने के स्वर में पूछा—"आप इतने उदास क्यों हो जाते हैं?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही!"—उत्साहहीन स्वर में कर्नल ने उत्तर दिया। कुछ देर बाद कर्नल को जान पड़ा, आलो चुपचाप आँसू पोंछ रही है। कर्नल ने आग्रह से उसकी व्याकुलता का कारण पूछा। वह बता देना सरल न था। आलो को और रुलाई आ गई। कर्नल के द्रवित होकर आग्रह करने पर अस्पष्ट और अस्फुट स्वर में, आँखों के आँसू पी-पी, होंठ काट-काटकर उसने कहा—आप ही तो सदा उदास हो जाते हैं। तब कर्नल के सबल हाथों में थमा आलो का कोमल हाथ पसीजकर काँप उठा।

और जिस समय मेजर की अनुपस्थिति में, अपने वक्षस्थल पर टिके आलो के सिर पर स्नेह से हाथ फेर कर्नल बँगले से बाहर गया, उसके हृदय में तृप्ति की एक विचित्र-सी गड़ान रह गई, जो चाह के द्वार खोल देती है...जैसे गहरे गड़े हुए काँटे के निकाले जाने पर चुभन का दर्द सुई द्वारा खोदे जाने की पीड़ा में बदल जाता है।

× × ×

समय-असमय मेजर के मकान की ओर खिंचा चला जाता कर्नल सोचने लगता—क्या उसका यह रवैया उसकी प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मान के अनुकूल है ? सूर्यास्त के समय, या वृक्षों से छनती चाँदनी में लालकुर्ती की सूनी सड़कों पर अपने और मेजर के बीच चलती हुई आलो की बिना आस्तीन की बाँह के शीतल स्पर्श की सुखद अनुभूति को फूलों पर पड़ी ओस के कणों की भाँति चुगकर और कभी भाग्य से निराले में उसके पसीजते हाथों को अपने हाथों में ले, स्नायु की स्फूर्ति और निरुद्देश्य उत्तेजना के अनुभव से क्लान्त हो अपने बिस्तर पर लेट सोचने लगता—उसे इस सब संगोपन और सतर्कता से आख़िर मिलता क्या है ?

उत्तर मिलता—इस सबका मूल्य है, संतोष की एक भावना कि वह बिलकुल अपदार्थ नहीं। कहीं, किसी हृदय में उसका भी कुछ मूल्य है। परन्तु उसके मूल्य के सम्बन्ध में शंका होने का तो कोई अवसर आया नहीं। उसकी सम्भ्रान्त स्थिति और अधिकार को सभी लोग सिर झुकाकर स्वीकार करते थे। उसकी क़द्र उसके पद के अलावा भी थी। तो फिर उसके अस्तित्व के लिये आलो के हृदय की स्वीकृति ही अन्तिम फ़ैसला क्यों हो ? क्या पुरुष के पौरुष की कसौटी नारी-हृदय ही है ? पद, सामर्थ्य, अधिकार और आत्म-विश्वास से ऊँचा उठा उसका मस्तक आलो

के निर्बल हाथों में आश्रय पाने के लिये क्यों व्याकुल हो उठता ? उसकी निर्बल बाँह को सहारा दे पाने से कौन शक्ति उसे मिल जाती ? और, उसे आलिंगन में ले उसके केशों, माथे, ग्रीवा, आँखों और ओठों का चुम्बनकर पाने की कामना से वह हवा में हिलते पत्ते की भाँति क्यों विचलित हो जाता था ? विद्रोही अफ़रीदियों की गोलियों की बौछारों में, तलवार हाथ में लिये अपनी सेना का संचालन कर, पहाड़ों के दुरूह शिखरों पर प्राप्त की विजय के चिह्न पदकों से सीने को ढँककर जो संतोष उसे होता, उससे गहरा और अधिक पूर्ण संतोष और आश्वासन उसे आलो के आशंका से धड़कते हृदय के सामीप्य में ही क्यों मिलता ? आलो के सिर झुकाकर स्वीकार कर लेने से कि वह उसकी है, उसका सीना अभिमान से क्यों फूल उठता था ?

कर्नल अपने अधिकार की सीमा को समझता था। वह स्वीकार करता था, समाज के दिये अधिकार से आलो मेजर की है। परन्तु उसका मन न मानता कि कोई व्यक्ति वस्तु के रूप में किसी का हो सकता है ? और सम्पूर्ण प्राणों और रोम-रोम से कर्नल के आलो को चाहने पर भी वह उसकी नहीं हो सकती ? उसकी इस चाह में अनुचित और अपराध क्या है ? जितना कुछ उसके भाग्य में आ सकता है, उसे वह कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार क्यों न करे ? जो फल उसके भाग्य में नहीं, उसकी सुगन्ध ही, या एक बूँद रस ही वह पा सकता है तो वही सही !

मेजर के प्रति कोई विरोध-भावना उसके दिल में न थी। वह उसका आदर करता था और कृतज्ञ था। परन्तु आलो और कर्नल के बीच चलने वाली आकर्षण की विद्युत्-लहर में मेजर व्याघातस्वरूप आ बनता। कर्नल और आलो के भावों की लहरें कुण्ठित हो जातीं; जैसे पंखे में आने वाली बिजली की

धारा बन्द हो गई हो ! मेजर की उपस्थिति से वे दोनों अकुला के रह जाते। मेजर की उपस्थिति में ही, परन्तु उसके अनजाने में, कर्नल और आलो की भावना का एक पृथक् संसार बन गया ? प्रत्यक्ष में आने का कोई अवसर उसके लिये न था। ऊपर की ओर राह न पा वह भावना कन्द के वृक्ष की भाँति, भीतर ही फैलती गई जिसकी शाखायें और पत्ते अत्यन्त संक्षिप्त रहते हैं परन्तु जड़ खूब फैलाव पाती है।

× × ×

आलो ने कर्नल का परिचय पाया था प्रतिभा और प्रतिष्ठा के ऊँचे मच पर खड़ी प्रतिमा के रूप में उस प्रतिमा के आत्मीयता से उसकी ओर देख मुस्करा देने पर वह सुख से पुलकित हो उठी। जब वही मूर्ति अपने मंच की सीढ़ियों से उतर आलो के क़दमों के पास आ खड़ी हुई, उसे अशंका हुई, वह इतनी बड़ी वस्तु पा रही है जिसे पूर्ण रूप से ग्रहण करने का सामर्थ्य उसमें नहीं। कर्नल उसके सम्मुख हो उठा—कातर याचक ! एक मधुर आशंका की मूढ़ता से उसका मस्तिष्क धुंदला हो गया। उसका कोमल शरीर काँप उठा। वह मधुर मूढ़ता, जो न तो आत्मरक्षा के लिये पीछे की ओर भागने देती है और न इष्ट की ओर हाथ ही फैलाने देती है। उस निर्बलता में किसी की वस्तु होने के संस्कार की दीवारों का सहारा ढूँढ़ने के अतिरिक्त और चारा न था।

जब कर्नल समय-असमय उसके घर जा उसे देखता खड़ा रह जाता और उसके मुस्कराकर पूछने पर केवल—"ऐसे ही" कह, उदास मुख से लौट जाता, दुःख से टुकड़े-टुकड़े उसका हृदय जान नहीं पाता, क्या दे देने और क्या पा लेने के लिये वह अकुला उठती है। उस समय उसे अपने चारों ओर दिखाई

देती, केवल 'किसी की होने की' अलंघ्य खाई! वह खाई अलंघ्य थी। परन्तु जब इस खाई के उस पार खड़ा कर्नल कातर नेत्रों से उसे पुकारता है, आँखें मूँद इस खाई में कूद जाने के लिये वह तैयार हो जाती है। कल्पना और विचारों में यह खाई वह कितनी ही दफ़े नहीं कूद चुकी थी?

सप्ताह में दो-एक बेर मेजर का देहली जाना आवश्यक रहता। मेजर के न रहने पर आलो अकेली घर बैठी क्या करे? सूर्यास्त के पश्चात् वह अकेली ही बँगले से पिछवाड़े की ओर चल देती। झाड़ियों और झुरमुटों में उलझती साड़ी की वह परवाह नहीं करती। आगरे जाती शाही सड़क (Grand Trunk Road) के किनारे मुग़ल काल की एक पुरानी, खंड़हर-अवशेष चौकी के पिछवाड़े, एक करील के वृक्ष के नीचे, सूर्यास्त के पश्चात् भी ग्रीष्म के सूर्य की तपन से उसाँसे लेती सूखी, जली घास से ढँकी, नंगी पृथ्वी पर कर्नल की बग़ल में बैठ, उसके सीने पर सिर रख, उसका सिर अपनी गोद में ले वह किसी दूसरे ही संसार में पहुँच जाती। इस सन्तोष का मूल्य उसे क्या देना पड़ सकता था?...उसका सम्पूर्ण संसार! उसका पति और दो बच्चे! इससे परे उसका और था क्या? इस सबकी बाज़ी लगाकर भी वह रह नहीं सकती......जब कर्नल की कातर आँखें उसे दिखाई देने लगती।

प्रत्येक सीमा पर वह सोचती—बस, इसके आगे नहीं! परन्तु सीमा पकड़ में नहीं आती। उसने सोचा था, कर्नल के विशाल वक्षस्थल पर सिर रख लेने के बाद, बस! परन्तु कर्नल इतना अधीर और कातर हो जाता है कि उसे असहाय बालक के समान हृदय से लगाये बिना रहा ही नहीं जा सकता। उसके झुके हुए होठों को अपने होंठ अर्पण न करना सम्भव नहीं रहता।

...अतल में अपने आपको गिरने से बचाने के लिये निस्सहाय हो उन होठों का आश्रय लिये बिना चारा नहीं ?

और कर्नल ? वायु की सूक्ष्म से सूक्ष्म हरकत को पहचानने वाले यंत्र की भाँति वह आलो के भीरु शरीर की प्रत्येक सिहरन और संकोच से विजड़ित हो जाता है। उसके चेहरे और आँखों का भाव कहने लगता है—अपनी क्रूरता और बर्बरता के कारण वह लज्जित है। आलो को आलिंगन में लिये उसकी बाँहें स्पष्ट रूप से शिथिल हो जाती हैं। क्षमा याचना के धीमे-से स्वर में वह कह देता है—"मैं तुम्हें बहुत दुखी करता हूँ।" तब स्नेह से उसके गले में बाँहें डाल इनकार से सिर हिलाये बिना आलो कैसे रहे ? कर्नल के व्यवहार में कहीं बल और जबरदस्ती का भाव नहीं ! उसका यह भाव ही आलो को नितान्त निस्सहाय कर देता है।

परिस्थिति, परिणाम और नारीत्व के संकोच का आश्रय ले आलो दृढ़ता प्राप्त करना चाहती है। अपना सहारा चाहते हुए कर्नल की बाँह थाम उसने साहस से कहा—"मैं तुम्हारी हूँ परन्तु जितना तुम मुझे पा चुके उससे आगे नहीं।"

अनुगत के भाव से कर्नल ने कहा—"बहुत अच्छा!" कर्नल की यह स्वीकृति मानो असह्य प्रहार था। अकुलाकर आलो ने कहा—"मैं कितनी दुष्ट हूँ ! तुम्हारे लिये कुछ भी नहीं कर सकती...... तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकती !......मैं चाहती हूँ, तुम्हें संतुष्ट देखना। इसके लिये मुझे सब कुछ स्वीकार है !"

आँखों में आगये आँसुओं को छिपाने के लिये उसने कर्नल के सीने में अपना मुख छिपा लिया। तब उसके केशों को सह-लाते हुए कर्नल ने अस्फुट शब्दों में उत्तर दिया—"मेरे सन्तोष के लिये इतना बड़ा मूल्य ?...समझ लो मैंने सब कुछ पा लिया।"

तब निर्बलता, अतृप्ति और असामर्थ्य की वेदना से आलो बहुत देर तक रोती रही।

× × ×

मेजर देखता था—कर्नल की प्रतीक्षा में आलो इतनी अनमनी हो जाती है मानो मेजर है ही नहीं। कर्नल की उपस्थिति से वह खिल उठती। उसकी आँखों में चमक आ जाती। कर्नल में उसके लिये जादू का आकर्षण है।

बहस में मेजर को विशेष रुचि न थी। वह स्वभाव से कर्मठ था। उसका अध्ययन दार्शनिक तर्क-वितर्क और बुद्धि की पैंतराबाजी के लिये नहीं, अपने विषय का गहरा परिचय पाने के लिये था। क्यों? और क्यों नहीं? के अनुशीलन में उसकी विशेष रुचि न थी। वह कल्पना का नहीं, तथ्य का जिज्ञासु था।

प्रेम का अर्थ मनुष्य शरीर की क्रिया और उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में क्या है, इसी विषय से उसे मतलब था। प्रेम की भावना से काल्पनिक सुख पाने और शून्य से भावना की सृष्टि रचने से उसे प्रयोजन नहीं था। वह चिकित्सा करता था शरीर की। मन, भावना और आत्मा जैसे तर्क और कल्पना में सीमित रहने वाले पदार्थों की नहीं। अपने विषय के क्षेत्र का ही वह चिन्तन और चर्चा करता था।

उस दिन अपने साधारण स्वभाव के विरुद्ध मेजर ने प्रेम की व्याख्या और तर्क किया। उसका कारण भी व्यावहारिक बुद्धि तथा स्वास्थ्य के प्रति डाक्टर की सावधानी ही था। उसे दिखाई दे रहा था, आलो और कर्नल का परस्पर प्रबल आकर्षण। इस आकर्षण का प्रभाव शरीर की क्रिया में प्रकट हो जाने से पहले ही लक्षणों को पहचान, आनेवाली परिस्थिति से बचने के लिये वह मनुष्य शरीरों को सावधान कर देना चाहता था। मेजर ने

कहा—"आवश्यकता के बिना मनुष्य शरीर में कोई क्रिया नहीं होती, कोई रुचि भी नहीं होती। मनुष्यों के नर-नारी शरीर की सृजन-शक्ति ही, अपना प्रयोजन पूरा करने के लिये मनुष्यों में आकर्षण और रुचि पैदा करती है। नर-नारी मात्र के परस्पर आकर्षण में यही एक रहस्य है। इस आकर्षण को किस सीमा तक चरितार्थ होने का अवसर मिलता है, इसी बात पर सब कुछ निर्भर करता है। आकर्षण को इन्द्रियों द्वारा प्रकट होने का अवसर न मिलने से यह नहीं कहा जा सकता कि वह शारीरिक आकर्षण नहीं। देखने और स्पर्श की इच्छा भी इन्द्रिय आकर्षण है। हाथ मिलाने और चुम्बन में अन्तर जान पड़ता है। परन्तु समीप आने और स्पर्श पाने की कामना और भावना दोनों में एक ही जैसी है। इस कामना का संतोष तभी होता है जब सामीप्य और स्पर्श की चरम सीमा आ जाती है या उत्तेजना शान्त होकर शरीर शिथिल हो जाता है।"

मेजर ने स्पष्ट शब्दों में नहीं कहा परन्तु आलो भी समझ गई कि लक्ष्य क्या था! अपने हृदय के मर्म स्थान पर आँच आती देख उसका मन आशंकित जरूर हुआ परन्तु प्रत्यक्ष में उसने स्वीकार नहीं किया; एतराज भी नहीं किया कि मेजर उनकी शुद्ध मित्रता के प्रति वैसा सन्देह कर सकता है। ऐसा एतराज कर देने से, समझ जाने के अपराध में, वह कर्नल से दूर रहने के लिये विवश हो जाती!

मेजर के इन शिखण्डी बाणों के प्रति तटस्थ भाव से विस्मय प्रकटकर वह हँसती हुई उन्हें सह गई और बोली—"वाह तुम भी कैसी बातें करते हो? मनुष्य के हृदय का मूल्य तुम्हारी दृष्टि में, उसकी धड़कन गिन, रक्त की गति जान सकने के सिवा और कुछ नहीं क्या?"......मेजर इससे अधिक और क्या कह

सकता था ? सम्पत्ति या वस्तु के रूप में नारी को अपने साथ बाँधकर रखने का ओछापन प्रकट करना उसके आत्म-सम्मान को गवारा न था।

अपने हृदय की धड़कन सुनते हुए मेजर ने दो-पहर रात गुज़ार दी। उस धड़कन में नाड़ी की गति ही नहीं कुछ और भी था। दाँतों से होठों को दबा वह सोचता रहा—कर्नल की तुलना में क्या वह इतना ही अरोचक और अपदार्थ है ? कर्नल की अट-पटी बातों से आलो के चेहरे पर छाजानेवाली कान्ति की स्मृति उसे दाहक जान पड़ने लगी। आलो के शीतल-सुखद स्पर्श की स्मृति से अब उसकी बाहें स्फुरित नहीं हो उठतीं बल्कि एक अरुचि-सी, उनमें किसी दोष को पहचानकर, मेजर के मन में जाग उठती है। आलो की कमनीय देह अपनी ओर से हटकर उसे कर्नल की ओर सरकती जाती दिखाई देती है। परन्तु वह क्या करे ?......कर्नल चाहे जैसा भी हो, यदि आलो की दृष्टि में वह इतनी बड़ी चीज़ है...यदि आलो का शारीरिक और मानसिक गठन कर्नल के शारीरिक और मानसिक गठन की ओर अधिक आकर्षित होता है, उसके सामीप्य से अधिक स्पन्दित होता है, तो वह क्या करे ?...

"क्या वह बीच से हट जाय ? जैसे दूषित फल की ओर रुचि नहीं होती वैसे ही अब मेजर आलो की ओर आकर्षण अनुभव नहीं करता। परन्तु अपनी वस्तु को अपनाकर रखना तो आवश्यक है ही ! हृदय की गति तीव्र हो जाने से रक्त सिर में चढ़ गया और वह सो न सका। अनेक भयंकर कल्पनायें और सम्भावनायें उसके मस्तिष्क में उठने लगीं।

बंगले की सीमा पर खड़े ऊँचे और झीने युकलिपटिस के वृक्षों से छनकर चाँदनी उनके पलंगों पर पड़ रही थी। दूध से सफ़ेद बिस्तर पर, वायु जैसी पारदर्शी मसहरी से ढंका, फ़ेनजैसी मल-

मल में लिपटा आलो का शरीर दिखाई दे रहा था जैसे किसी कलाकार ने 'सुषुप्त-सौन्दर्य' का दृश्य सजाया हो। उसकी सजीव शीतल-स्पर्श बाहें, डमरू जैसी पतली कमर के दोनों ओर उसके शरीर की कमनीय पुष्टता, जो एक दिन मेजर को अतृप्ति और कामना की 'सुखद मूढ़ता में विस्मृत कर देती थी, अब केवल चिंता जगा देतीं।

अगले दिन सुबह की छोटी हाज़री के समय मेजर ठीक से वर्दी पहने, भावों का संयत किये बैठा था। सहज उत्साह से आलो ने पूछा—"हस्पताल से कब तक लौटोगे ?"

"क्यों ? गाड़ी चाहिये ?"—मेजर ने पूछा और उसे याद आगया, बृहस्पति की संध्या कर्नल का उनके यहाँ चाय पीने का नियम। उस समय उसकी पसन्द की चीज़ों के लिये आलो की व्यग्रता......खीरे के सेण्डविच...सोयाबीन की खताइयाँ! दूसरी ओर मेजर को दिखाई देने लगी अपनी रात भर की अनिद्रा! जिसकी न किसी को ख़बर थी, न चिन्ता।...और मथुरा में खीरा न मिल सकने की आशंका से खीरे के लिये समय पर देहली तार दे देना। शान्त स्वर में उसने उत्तर दिया—"आज मैं घोड़े पर जा रहा हूँ......बैरा, साइस को बोलो घोड़ा लाये !"

× × ×

आलो को मुद्दत से तमन्ना थी—चाँदनी रात में ताज देखने की। कर्नल से ही उस सौन्दर्य का चर्चा उसने सुना था। बहुत दिन पहले से ही मेजर को मजबूर कर, उसके अनेक काम स्थगित करा, कार्तिकी-पूर्णिमा की रात को आगरे चलने के लिये आलो ज़ोर दिये आ रही थी। दो ही दिन बीच में शेष थे। उस दिन संध्या की चाय के समय इस विषय में वह कर्नल से भी निश्चय कर लेना चाहती थी। यों तो उसे विश्वास था

ही कि कर्नल उन्हीं की गाड़ी में उनके साथ जरूर चलेगा।

कर्नल के आ जाने पर प्यालों में चाय छोड़ते हुए, गत संध्या मेजर द्वारा की गई प्रेम की व्याख्या की बात याद कर, चहरे पर संकोच की लाली लिये आलो ने कर्नल से पूछ डाला—"प्रेम क्या केवल इन्द्रिय-आकर्षण और वासना ही है ?" आलो के इस प्रश्न का अर्थ कर्नल और मेजर दोनों के लिये अलग-अलग था।

हाथ में लिये समाचार-पत्र में दृष्टि गड़ाये और चाय के प्याले में बहुत देर तक चम्मच चलाते हुए मेजर अपने ऊपर आनेवाले इस वार की प्रतीक्षा करने लगा।

कर्नल आलो के इस प्रश्न को अपने व्यवहार में उच्छृङ्खलता के आभास के प्रति ताना समझ सकता था परन्तु उसे आलो पर अगाध विश्वास था। वह भला है या बुरा, जो भी हो, अपने आपको आलो की ही वस्तु समझकर वह निश्चिन्त था। स्वभाव के अनुसार प्रश्न को अधमुँदी आँखों से सोच कर्नल ने उत्तर दिया—"प्रेम में इन्द्रियाकर्षण भी है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि प्रेम केवल इन्द्रियाकर्षण ही है। मनुष्य का जीवन पशुओं की भाँति केवल इन्द्रियों के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं। मनुष्य मन और मस्तिष्क प्रधान जीव है। मानसिक सन्तोष के लिये भी वह बहुत कुछ करता है। मनुष्य जब नक्षत्रों की दूरी नापने और नये विटामिन ढूँढ़ने में जीवन लगा देता है, तो उसे किस इन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है ? इससे केवल मन या बुद्धि का ही सन्तोष होता है। ऐसे ही मन और मस्तिष्क से भी किसी वस्तु को पाने की इच्छा की जा सकती है। मन का यह अनुराग शरीर और इन्द्रियों से प्रकट हो सकता है और यह भी हो सकता है कि वह इस तरह प्रकट न हो...केवल मन या मस्तिष्क में ही रहे।

कर्नल की बात सुनने की उत्कंठा में आलो चाय के प्याले

को भूल गई थी। उसे होठों से लगा, प्याले के ऊपर से देखते हुए उसने कहा—"मन और मस्तिष्क का प्रेम और आकर्षण भी तो सन्तोष देता है। जैसे विचारों की समानता......या श्रद्धा या भक्ति......नहीं क्या ?"

मेजर इस प्रकार गुम था मानो अख़बार में कोई बहुत ज़रूरी बात ढूँढ़ रहा हो। मेजर की इस उपेक्षा और उदासीनता की चिन्ता न करना कर्नल के भावुक हृदय के लिये सम्भव न था। मित्र की उदासीनता में, उसकी स्त्री की उपस्थिति से सुख पाने के अपराध की अनुभूति से कटकर कर्नल ने सहृदयता प्रकट करने के बहाने क्षमा माँगते हुए पूछा—"क्यों चौहान, बिलकुल चुप कैसे हो ?"

"नहीं तो......कुछ नहीं।"—पत्र से आँख हटाये बिना ही संयत स्वर में मेजर ने उत्तर दिया। उसके स्वर में और मुद्रा में विश्राम के समय का हलकापन न था। कर्नल को इससे आभास मिला, भयंकर तूफ़ान की प्रतीक्षा में स्तब्ध हो गये आकाश का। मस्तिष्क को व्याकुल करती हुई चिन्ता को वह प्रकट परिहास और हलकेपन में छिपाये रखने का यत्न कर रहा था परन्तु चाय के अन्त तक यह निभ न सका।

आह्लाद के मद में माती आलो को अपने भाग्य के आकाश में घिरे चले आते इस तूफ़ान की आशंका भी न थी। हृदय में छलकती सहृदयता से वह दोनों को ही सराबोर और तृप्त कर देना चाहती थी।

मन की आशंका से परास्त हो कर्नल का स्वर बदल गया। उसने कहा—"अब चलूँगा, कुछ काम है"—और वह सहसा उठ खड़ा हुआ। उसके घुटने पर हाथ रख कुछ देर और बैठने का आग्रह आलो ने किया पर वह टिक न सका।

तीन कमरों को पाकर ड्योढ़ी में खड़ी उसकी गाड़ी तक

उसे छोड़ने जाते समय कर्नल के कंधे से सिर लगाकर आलो ने पूछा—"परसों चाँदनी में ताज देखने तो चलोगे न ?"

"नहीं, नहीं चल सकूँगा!"—कातरता और दृढ़ता के लिये विवशता के स्वर में कर्नल ने उत्तर दिया और वह चला गया।

उस रात मेजर की चुप को तोड़ने का यत्न आलो ने कितनी ही बेर किया परन्तु बीच में कर्नल की उदासी का ध्यान आजाने से वह भूल सी जाती। आखिर उसने पूछा—"तबीयत तो खराब नहीं ?" उत्तर में "नहीं" सुन वह स्वयम थकान अनुभव करती हुई अपने पलंग पर जा लेटी।

अगले दिन और मोटर से आगरे चल देने के समय से कुछ पहले तक तीन-चार दफ़े साधारण कारणों की वजह से आलो ने सुझाया, ताज देखने जाने की बात यदि किसी दूसरी पूर्णिमा के लिये स्थगित रहती तो शायद अधिक अच्छा होता। दो-एक दफ़े शायद मेजर ने सुना नहीं और जब न सुनने का उपाय न रहा, तो 'दूसरे की चिन्ता में अपनी उपेक्षा' के तीव्र विष को निगल, परन्तु स्वर को सँभाल, उसने उत्तर दिया—"छुट्टी तो ले ही ली है, कैंसल करना ठीक न जँचेगा!" और जब आलो ने द्रवित स्वर में पूछा—"तुम कुछ उदास से हो !" तो मेजर ने स्वर में अस्वाभाविक स्फूर्ति लाने का यत्न कर उत्तर दिया—"नहीं तो !"

× × ×

हृदय के अगाध शोक की स्मृति में आँसुओं के पिरामिड की भाँति, अनन्त पीड़ा का संकेत ताज बनाया गया था। हृदय की वह चरम अनुभूति घनीभूत हो सौन्दर्य में परिणत हो गई। आँसू मोती बन गये। जीवन की गति ऐसी ही है।

शाहजहाँ के उस अमर शोक में आनन्द और तृप्ति की खोज करने वालों का समारोह लग रहा था। जनरव के कोला-

हल के बीच ताज का शुभ्र शोक आत्मरत और स्तब्ध खड़ा था। उस शोक का शृंगार करने के लिये फव्वारे चारों ओर चाँदनी में मोती उछाल रहे थे। घास के मखमली फ़र्श पर कलाविदों की महफ़िल में कोई कलावंत सितार के दुखे हुए तारों को विकल कर उनके मर्मान्तक चीत्कार से आनन्द की वर्षा कर रहे थे। कहीं कोई सौन्दर्य प्रेमी एकान्त भाव से उस महाशोक के सौन्दर्य को अपलक तृषित नेत्रों से हृदयस्थ किये जा रहे थे। उनसे हटकर प्रेमियों के जोड़े चिर-विरह की छाया में चिर-मिलन का संकल्प कर रहे थे।

प्रायः ग्यारह बजे तक मेला-प्रेमियों के चले जाने के बाद कला और सौन्दर्य के विशेष पारखियों के देश-विदेश से आये समूह आने लगे। चन्द्रमा की किरणें, कोण विशेष से आने पर, फ़न के समान श्वेत संगमर्मर में जड़े नग अपनी चिरनिद्रा से जाग किरणें छिटकाने लगे।

मेजर और आलो एक निराली बेंच पर बैठ गये। अनिच्छा से लाई जाकर भी आलो ने चाँदनी में सराबोर ताज की ओर देख मुग्ध हो मुस्कराकर कहा—"ओफ़! कितना भव्य सौन्दर्य है?" और दूसरे क्षण उसकी अपलक आँखों के आगे ताज की निर्जीव-शुभ्र-शीतलता के स्थान पर दिखाई देने लगी, ग्रीष्म के धूलि-धूसरित आकाश की, शान्त तालाब के लहर रहित, गँदले जल की भाँति, निस्तेज चाँदनी और उसमें पड़े हुए उज्ज्वल पत्थर टुकड़े की भाँति चाँद; खण्डहर की बगल में उगा हुआ छायारहित करील का विरूप वृक्ष, बिखरी ईंटों पर बैठा कर्नल उसके प्रति कठोरता और संकोच का गिला लिये...वे दोनों, सीमाओं में बँधे, छटपटाते हुए! उस व्याकुलता के प्रवाह में सब बाधाओं को बहाकर, कर्नल को पा जाने और उसकी हो

जाने के लिये आलो सम्पूर्ण प्राणों से आकुल हो उठी। शरीर रोमांचित हो गया और आँखों में आँसू आ गये! सहसा चौंक कर्तव्य को यादकर, उमड़ते आँसुओं को पी, होठों पर मुस्कराहट ला, मेजर को सम्बोधन कर उसने फिर कहा—"ओफ़ कितना सुन्दर है यह दृश्य !"

आलो की बगल में चुप बैठा मेजर उसकी विस्मृति और मौन के बोझ को अपने हृदय पर झेल रहा था। उस मौन के सम्भव कारणों की कल्पना से उसकी आँखों से चिनगारियाँ फूट जाना चाहती थीं। अपनी बग़ल में बैठी अपनी स्त्री के मौन और उदासी में उसे दिखाई देती थी—कर्नल की याद और अपना अपमान ! समीप बैठी अपनी स्त्री का शरीर जो एक दिन उसके लिये सुखद अनुभूति और विश्रांति का स्रोत था, आज शत्रु के देश की तरह अगम बन चुका था। आज भी आलो उतनी ही सुखद और मोहक थी परन्तु कर्नल को मन में लिये आलो उसके किस काम की ? जैसे किसी दूसरे का चबाया हुआ कौर ?

हृदय पर लगी चोट को भुला मेजर चिकित्सक बना रहना चाहता था। मन पर विशेष रूप से प्रभाव डालने वाली परिस्थितियों में आलो को ला, जहाँ कर्नल का ध्यान उसके मनमें न हो, वह उसे एक बार फिर से अपनाने के लिये कार्तिकी-पूर्णिमा में, कल्पनातीत शोभा बरसाते ताज की छाया में आगरे लाया था। यहाँ पहुँच उसने देखा—सशरीर कर्नल की अपेक्षा उसकी स्मृति आलो को और भी अधिक वश में किये हुए है। अपने सामीप्य से जिस स्फूर्ति की आशा वह आलो में करता था, वह कहीं न थी ! कर्नल की छाया ने उन्हें अलग-अलग कर दिया था। आलो जो उसकी थी....आज उसकी नहीं ! वह आलो जो उसके व्यक्तित्व, परिवार और प्रतिष्ठा का आधार है; उससे यों दूर हटती जा रही

है जैसे किनारे से हटती हुई नाव ! और वह दोनों बाँहें फैलाये, असहाय किनारे खड़ा है। ताज की ओर आँखें गड़ाये मेजर सोच रहा था—अपने जीवन को वह यों छीना जाने देगा ? उसी समय सहसा आलो ने कहा—"अब चलें वापिस !"

एक भयंकर विडम्बना से मेजर का हृदय घायल हो उठा। महीनों पहले से कार्तिकी-पूर्णिमा में ताज देखने की आलो की व्याकुलता एक ही घण्टे में समाप्त हो गई ?......क्यों ? प्रतिहिंसा से उसका मन बेचैन हो उठा !

जिस प्रयोजन और अवसर की तलाश में वह इतनी दूर आया था, किस सरलता से फूँक मार कर वह उड़ा दिया जा रहा है। कर्नल इतनी दूर बैठ कर भी उसकी गर्दन दबा कर उसके जीवन के श्वास को चलने नहीं देगा। उसे जान पड़ा—जीवन के जंगल से निर्बल जीव की भाँति उसे खदेड़ा जा रहा है। सबल जीव उसके जीवन के सार का भोजन कर तृप्त होना चाहता है। आत्म-रक्षा के लिये, प्रतिहिंसा की भावना से उसका रक्त खौल उठा। उसके नाखून पंजों से बाहर निकल पड़े।

आलो बेचैन हो रही थी, जैसे काँटों पर बैठी हो ! साड़ी का आंचल कंधों पर खींचते हुए अनुनय के स्वर में, मानो दया की भीख माँग, उसने कहा—"अब चलें, सर्दी मालूम हो रही है !"

मेजर को जान पड़ा, इस अनुनय से आलो उस पर जबरदस्ती और अमानुषिकता का इलज़ाम लगा रही है। "चलो"—कह वह सहसा उठ खड़ा हुआ। सिर लटकाये, होंठ चबाते हुये लौटते समय वह सोच रहा था—उसके साथ एक घण्टे भर बैठना भी असह्य हो गया। इतना ही अपदार्थ और हेय उसे बना दिया गया। अपनी ही स्त्री की संगति के लिये उसे याचक होना पड़े ? और उसकी वह याचना यों तिरस्कृत हो ?

वे दोनों चुप-चाप लौट रहे थे। आलो थकी-सी सर्दी से सिकुड़ती सिमटती चल रही थी और मेजर शिकारियों से घिर गये चीते की भाँति आत्म-रक्षा के लिये वार करने पर तत्पर ! वार करने के सिवा आत्म-रक्षा का दूसरा उपाय न था। उसका व्यक्तित्व, उसका पौरुष, वंश परम्परा से चला आया उसका सम्मान, सबसे बढ़कर पुरुष के नाते स्वामित्व का उसका अधिकार और स्थिति ! सब कुछ छिना जा रहा था। सभ्य समाज की भद्रता की शतरंजी चालों में असभ्य समझे जाने की 'शह' को बचाता हुआ वह 'मात' होकर समाप्त होने जा रहा था। और अब भी चतुर खिलाड़ी का विनोद पूरा नहीं हुआ। इस खेल का अन्त है मेजर का अन्त ! अंगारे की सी आँखों से शत्रु की ओर घूरते हुए चीते की भाँत मेजर अपने दोनों हाथ पतलून की जेब में डाले, दाँतों से होंठ चबाते, सिर पर खिलखिलाते चन्द्रमा की चाँदनी में स्वयम् अपनी परछाईं को कुचलता चला जा रहा था।

मस्तिष्क के क्षोभ से पथराई आँखों के सामने मेजर को दिखाई दे रहा था—कर्नल कौशिव अपनी बाँह पर भाव-मूढ़, शिथिल शरीर, सुख से मुस्कराती आलो को लिये जा रहा है। तिरस्कार से मेजर को ललकार कर वह कह रहा है—नारी के शरीर पर स्वामित्व का तुम्हारा अहंकार निर्मल है। जिस व्यक्ति से वह तृप्ति और संतोष पा सकती है, वह उसी की है।... ... तुम अयोग्य हो ? जैसे वन में असमर्थ पशु मारा जाता है, वैसे ही तुम भी हो !

सिर पर आये आक्रमण से मेजर की शिरायें कंटकित हो उठीं। क्या निर्बल और भीरु पशु की भाँति निस्सत्व हो, दुम दबा कर, सब कुछ खोकर वह भाग जायगा ? परन्तु यों भागकर जान बचाने से बच क्या रहेगा ? निर्बल पशु भी अपने दाँतों और पंजों

से आत्म-रक्षा की चेष्टा किये बिना, अपनी पराजय स्वीकार नहीं करता। वह क्या नपुंसक बनकर अपना गला कट जाने देगा ?

कार्तिकी पूर्णिमा की, रुपहली धूप-सी उज्ज्वल, चाँदनी में काली रेखा-सी स्पष्ट और सुनसान सड़क पर मोटर तीर की तरह दौड़ी जा रही थी। मोटर की तेज़ चाल की सिहरन से, ठण्डी वायु के तीखे स्पर्श से, और मेजर की भयानक गम्भीरता से आलो काँप काँप उठती। उसके गालों पर आँसुओं की दो धारायें बेर-बेर चमक उठतीं और शीतल वायु उन्हें बेर-बेर सुखा देती। उसे अनुभव हो रहा था—प्रलय का वेग अत्यन्त समीप अन्त की ओर उसे उड़ाये लिये जा रहा है। वह अन्त है...मेजर की मूक और गम्भीर नाराज़गी।

उस भय से आलो का रोम-रोम काँप रहा था। अपने अपराध के बोझ से उसका श्वास रुकता-सा जान पड़ता था। उसका वह अपराध था, मेजर की नाराज़गी ! यदि मेजर नाराज़ है, असंतुष्ट है, तो यह उसका अपराध है। मेजर असंतुष्ट क्यों है ?......वह उसके उपयोग में क्यों नहीं आती ? मेजर को उससे विरक्ति क्यों होती है।

अपराध की अनुभूति से उसका हृदय बैठा जा रहा था। परन्तु उपयोग में आने से उसने इनकार किया है कब ? मेजर चाहे जिस तरह उसका उपयोग करे ? वह बेशक उसके टुकड़े-टुकड़े कर दे ! उसे अपने पैरों के नीचे कुचल डाले ! परन्तु नाराज़ न हो। मेजर को सब अधिकार है। उनका संतोष ही उसका जीवन है। वे नाराज न हों ! और इनकार का अधिकार ही उसे कब है ? क्या कभी उदास हो जाने का भी अधिकार उसे नहीं...?

सुबह तीन बजे जब कार्तिकी पूर्णिमा का चाँद अपने स्निग्ध तेज से आकाश में चमक रहा था मेजर की मोटर उसके बँगले

की ड्योढ़ी में वापिस आ पहुँची। एक भी शब्द कहे बिना मेजर ने आलो के समीप का दरवाज़ा खोल दिया। बेखुदी की सी हालत में मोटर से उठ वह अपने पलंग पर जा गिरी। वह फूट-फूट कर रो उठी। रोने का वह वेग जैसे अनन्त और अपार था।

× × ×

अपने कमरे में पहुँचकर मेजर फ़र्श के बीचोबीच खड़ा रह गया। मानसिक उत्तेजना सीमा से बढ़ जाने के कारण चहल-क़दमी के लिये क़दम उठाना भी सम्भव न रहा। सिर झुकाये खड़े मेजर को अपनी कपड़ा पहनने की अलमारी के कोने में चमड़े के केस में लटका हुआ रिवाल्वर आँखों के सामने दिखाई देने लगा। अपनी निर्बलता की अवस्था में जब उसे शक्ति और सहायता की आवश्यकता थी, शक्ति का वह रूप उसकी आँखों के सामने नाच गया। रिवाल्वर को अपने माथे पर रख, उँगली का इशारा मात्र कर देने से वह सब झंझटों से छूट जा सकता है। इनकार के संकेत में उसका सिर हिल गया। इस भावना को कुचल डालने के लिये उसने अपना पैर फर्श पर पटक दिया।

अपने आपको समाप्त कर देने से अन्याय का प्रतिकार नहीं हो सकेगा। उसके अधिकार और अस्तित्व की रक्षा नहीं हो सकेगी। वह अपने पौरुष और वंश-सम्मान को नहीं बचा सकेगा! एक बेर ख़याल आया, आलो को समाप्त कर देने से सब उलझन समाप्त हो सकेगी। परन्तु वह उसे अपने अधीन क्यों नहीं रखेगा? उसे उसकी ज़रूरत है और वह उसे रखेगा। वह उसे खो क्यों देगा? पराजय क्यों स्वीकार कर लेगा? क्यों न वह संकट के कारण प्रतिद्वन्दी को दूर करे? अपने ऊपर प्रहार करनेवाले को ही क्यों न समाप्त करे। निश्चय के

भाव से उसके होंठ बल खा गये। उसकी आँखें अधमुँदी होकर शून्य में दृश्य देखने लगीं। अभी जाकर वह कर्नल को समाप्त कर दे सकता है परन्तु इस प्रकार सहसा उतावले बन जाने से उद्देश्य पूरा होने के बजाय और भी बरबादी होगी।

अपने कमरे में कई चक्कर लगा चुकने के बाद कुर्सी पर बैठ उसने निश्चय किया—क्या उपाय करना होगा ? कमरे के दरवाज़े पर उँगलियों की हल्की आहट सुनाई दी। आँख उठाकर देखा। बहरे ने सलामकर ख़बर दी, छोटी हाज़री तैयार है। मेजर ने खिड़की की राह बाहर देखा। चाँद की चाँदनी की जगह सूर्य की किरणें ओस से भीगे वृक्षों और घास को सहला रही थीं। संसार का रंग बदल चुका था परन्तु मेजर के मन में वही बेचैनी काँटे की तरह चुभ रही थी।

"बहुत अच्छा !"—उसने बहरे को उत्तर दिया और खाना खाने के कमरे में जा आलो की प्रतीक्षा किये बिना प्रातराश आरम्भ कर दिया।

बहरे ने दुबारा सलाम दी—मेम साहब सलाम बोलते हैं, तबियत खराब है, चाय नहीं पीयेंगे। मेजर ने सिर हिलाकर ख़बर मिलने की सूचना दी और चुपचाप नाश्ता करता रहा।

कोई असाधारण बात नहीं हुई। दिन भर के लिये मेजर की छुट्टी थी। वह कहीं बाहर नहीं गया। अभ्यास के विरुद्ध दोपहर का खाना भी उसने अकेले ही खाया और सिगरेट बहुत पिये। परन्तु कमरे में सिगरेट समाप्त हो जाने पर और लाने के लिये न कहा। आलो के दिन भर अपने कमरे में पड़े रहने पर उसकी चिन्ता न करना असाधारण बात हो जाती, इसलिये दोपहर बीतने पर मेजर ने उसके कमरे में जाकर पूछा—"कैसी तबीयत है ?"

—"ठीक है।"
—"कोई तकलीफ़ तो नहीं ?"
—"नहीं।"

मेजर वापिस लौट गया। आलो ने दिन भर प्रतीक्षा की थी कि आख़िर मेजर उसकी तबियत पूछने आयेगा। आख़िर उसका पति-हृदय उसकी असहाय अवस्था पर पिघलेगा। इसी आशा में आलो ने मान भरा उत्तर दिया था कि दिन भर रोकर, उपेक्षित पड़ी रहकर भी उसकी तबियत ठीक है, उसे कोई तकलीफ़ नहीं। आँखों से बह जाने के लिये उसके आँसू उमड़ा ही चाहते थे कि उसे मेजर के बाहर चले जाने की आहट सुनाई दी। प्रबल वेग से वह फूट-फूटकर और हिचकियाँ लेकर रो उठी !

उस दुख में आलो किसकी शरण लेती ? उसके दोनों बच्चे उससे बहुत दूर मंसूरी की पहाड़ी पर शिक्षा पा रहे थे। उसका पति उसे तड़पाने में सुख पा रहा था। किस बात का यह दण्ड उसे दिया जा रहा था ? केवल विवश और पराश्रय होने का। ऐसी अवस्था में यदि वह मर जाय तभी उसे शान्ति मिल सकती है। केवल मृत्यु ही उसे शरण दे सकती है। परन्तु मौत भी तो उसे नहीं आती। उसके मर जाने से दुख किसको होगा ? उसके बच्चे बिलखेंगे परन्तु इतनी दूर वहाँ शायद ख़बर भी न पहुँच सके। और कर्नल—वह ज़रूर दुखी होंगे। कितना विशाल हृदय है उनका और उसमें कितनी करुणा है ? उनका हाथ सिर पर होने से इस समय कितना सहारा मिल सकता है ? और वही उसे नहीं मिल सकता—।'मुझे शान्ति और सान्त्वना मिल सकना पाप है। वे अब कभी न आ सकेंगे। मेरी अवस्था को जानकर भी न आ सके। और जाने वे क्या सोच रहे

होंगे...वे जितने बड़े हैं उतने ही भावुक भी। हृदय उनका दुख में धधकेगा परन्तु मुख से कुछ न कहेंगे। और उन्हें आश्वासन देनेवाला है भी कौन ? जो उनके परेशान सिर को अपनी गोद में रख सके ?"...उसे दिखाई देने लगा—कर्नल का वह गम्भीर और रोबीला चेहरा आँखों में दो बूँद आँसू लिये। उन्हें सहारा देने वाला कौन है ?

वह तड़प उठी। अपने बालों को नोंच, दाँतों से होंठ काट, गले में उमड़ आते क्रन्दन को उसने दबा लिया। अपनी दीन और निस्सहाय अवस्था के कारण उसकी इच्छा होती थी, सिर नोच कर रो देने की—आत्म-हत्या कर लेने की। परन्तु कर्नल के दुख के विचार से उसका दुख दूर करने के लिये वह किसी भी दुस्साहस के लिये तैयार थी। कर्नल के उदास मुख को हृदय से लगा आश्वासन का एक शब्द कह सकने के लिये लोक-लाज की परवाह न कर वह उनके घर जाने के लिये, सड़क किनारे की चौकी के खण्डहर तक जाने के लिये थी...वह प्राण तक दे देने के लिये तैयार थी। उनका सब दुख उसी के कारण तो है। क्योंकि वे उस पर दया करते हैं। यदि इस दुख से उन्हें कुछ हो गया तो !......उनके सुख के लिये वह अपने प्राण तक दे सकती है परन्तु उसके प्राण क्या उसके अपने हैं ?......और मेजर ? मेजर के संतोष के लिये भी वह अपने प्राण दे देने के लिये व्याकुल है। मेजर की मुस्कराहट का मूल्य वह अपने प्राणों से देने में नहीं हिचकेगी परन्तु उसके प्राणों का मूल्य क्या ? कहीं कुछ भी तो वह उनसे कर नहीं सकती !

× × ×

मेजर के साधारण जीवन में विशेष अन्तर नहीं आया। अन्तर आया तो केवल इतना कि पहले मिसेज़ चौहान सदा

ही मेजर के साथ रहतीं, अब वह सभी जगह अकेला जाता। कारण यह कि मिसेज़ चौहान की फेफड़े की पुरानी बीमारी चमक उठी थी और उन्हें पूर्ण विश्राम की आवश्यकता थी। गम्भीर तो मेजर पहले से ही था। उस गम्भीरता में चिन्ता का कुछ पुट ज़रूर मिल गया परन्तु स्त्री की कठिन बीमारी में वह था भी स्वाभाविक।

कर्नल से उसकी पुरानी मित्रता भी ढीली नहीं पड़ी। आगरे से लौट केवल चार दिन ही मेजर उसके यहाँ न जा सका। कर्नल को अपने यहाँ आने के लिये वह नहीं कहता। बल्कि ऐसी बात ही वह नहीं आने देता कि कर्नल उसके यहाँ चलने का प्रस्ताव करे। कर्नल इस स्थिति को समझता न हो सो बात नहीं। परन्तु भद्रता के नाते उसने ऐसा व्यवहार किया कि जैसे समझता नहीं। मानसिक क्षोभ के कारण केवल कुछ अन्य, मनस्क सा रहता। प्रकट में वह इसका कारण बताता, शरीर की शिथिलता, जिसका स्पष्ट कारण कुछ भी जान नहीं पड़ता। सम्भवतः अफग़ान युद्ध के लगे घावों का कुछ प्रभाव उसके शरीर में शेष रह गया था।

मेजर कच्चा डाक्टर नहीं था कि मानसिक और शारीरिक अस्वास्थ्य में भेद न समझे। कर्नल की शिथिलता और अस्वास्थ्य का कारण वह खूब समझता था और लहू के घूंट भरकर रह जाता। परन्तु प्रत्यक्ष में उसने सहानुभूति ही प्रकट की। वज्ञानिक तफ़सील से कर्नल को उसने समझाया कि घावों का विष शरीर में रह जाने पर स्नायु की दुर्बलता शरीर को क्लांत कर देती है। उसका उपचार होना आवश्यक है। मेजर ने कर्नल को यथासम्भव न चलने-फिरने और पूर्ण विश्राम कर औषध सेवन करने का परामर्श दिया।

मानसिक व्यथा और निरुत्साह में रोगी बनकर एकान्त में पड़े रहने में ही कर्नल को सुविधा अनुभव होती। क्रमशः चलने वाली विश्रान्ति और रोगी के से व्यवहार से वह रोगी बन भी गया। मेजर नुसखा लिख देता और कर्नल का अर्दली दवा ले आता। वह दवाई कभी कर्नल के पेट में और कभी यों ही जाती। मेजर के प्रति कर्नल के अन्तःकरण से विरक्ति, ग्लानि और विरोध ही उठता। परन्तु जब मेजर मित्रता के नाते सेवा और सहृदयता का उद्गार लेकर जाता तो उसे वह ठुकरा कैसे सकता था? यह जानकर भी कि मेजर साधारण मनुष्य की संकीर्णता और ईर्षा से ऊपर नहीं उठ पाता। कर्नल को स्वीकार करना पड़ता है कि उसमें दूसरे कितने ही गुण हैं। बल्कि स्वयं अपनी ओर से मेजर को पहुँचने वाले दुख के विचार से वह उसके प्रति सहानुभूति दिखाने के लिये विवश सा हो जाता।

आलो की स्मृति ही कर्नल का रोग थी। परन्तु आलो को आशंका से बचाये रखने के लिये प्रत्यक्ष में उसे भुलाकर, उससे उदासीन रहकर, वह सब कुछ सह जाता। वह ज़िक्र भी न करता, आह भी न भरता। भय था—उसकी आह की उष्णता से वह कोमल फूल घाम न खा जाय!

शरीर की व्याधि में मेजर को अपनी दवाई पर भरोसा था और मानसिक रोग की औषध वह समझता था समय को। परन्तु मेजर के दोनों ओर पड़े मानसिक और हार्दिक व्याधि के रोगियों पर समय के मरहम ने कोई प्रभाव न दिखाया। आलो और कर्नल की गुप्त व्यथा और उनका प्रकट शैथिल्य मेजर को दो ओर से आनेवाले बाणों की भाँति बेध रहा था। मेजर की उपेक्षा कर दोनों ओर से चलनेवाले आकर्षक के यह बाण

उसे मर्माहत किये देते थे। इन प्रहारों में अपने आत्म-सम्मान को बनाये रखना उसके लिये असम्भव होता जा रहा था। इन प्रहारों से वह धूल में मिला जा रहा था। प्रतीक्षा और सहनशीलता की भी एक सीमा होती है।

× × ×

अनेक इलाज कर चुकने के बाद आखिर मेजर ने कर्नल को समझाया—"कौशिव, तुम्हें एक इंजेक्शन लेना पड़ेगा। तुम्हारा आमाशय औषध को पकड़ नहीं पाता।"

"यह तुम्हीं जानो"—उदासीनता से कर्नल ने कहा—"परन्तु क्या निस्सार जीवन को बहुत दिन तक रगड़ते रहना आवश्यक है? चौहान, तुम्हारी विद्या की चतुराई इसी में है कि दीपक को स्वाभाविक ढंग से बुझ जाने न देकर जीवन की बत्ती को ज्यों-त्यों उकसाते जाओगे। और दीपक को बहुत दिन तक टिमटिमाते रखोगे। इंजेक्शन भी लगा लो! तुम्हारी साइन्स का कोई अरमान शेष न रह जाय।"

अपने छोटे से सर्जरी बैग से मेजर ने इंजेक्शन की सुई और नली निकाली। एक अद्भुत गम्भीरता-सी उसके चेहरे पर छा गई। मुस्करा कर कौशिव ने कहा—"इतना ही भरोसा है तुम्हें अपने इंजेक्शन का कि वह मरीज़ में जीवन का उत्साह भी पैदा कर दे?"

आँखें नीचे किये ही मेजर ने मुस्कराने की चेष्टा की। कर्नल ने समझा—"मित्र के जीवन के प्रति करुणा और आशंका को छिपाकर मेजर 'डाक्टर' बना रहना चाहता है। कृतज्ञता से उसने अपनी बाँह आगे बढ़ा दी।"

इंजेक्शन नाड़ी के भीतर लगाने के लिये मेजर ने कर्नल की बाँह में, कोहनी के ऊपर रबड़ का बंधन लगाया। सधे

हुए हाथों से भी सूई एक बेर छिटक गई। मुस्कराकर कर्नल ने कहा—"क्या इंजेक्शन भी इतना ही निर्बल होगा चौहान ?"

मेजर के नेत्रों में चमकते अग्नि बिन्दु उद्दीप्त हो उठे। स्थिरता और दृढ़ता के लिये पल भर साँस रोक उसने इंजेक्शन लगा दिया। कर्नल ने मुस्कराकर कहा—"धन्यवाद !"

उस मुस्कराहट का प्रत्युत्तर मेजर न दे सका। उसके चेहरे पर काठ की सी कठोरता आ गई। नेत्र झुकाये ही उसने कहा—"कर्नल, कुछ ही सेकण्ड में तुम नहीं रहोगे। चाहो तो एक बार पश्चात्ताप कर लो !— तुम्हीं ने मुझे मजबूर किया है......। यह दंड है मुझे उजाड़ देने का......!!'

कर्नल की आँखों के सामने सब कुछ अस्पष्ट होकर नाच उठा जैसे आँखों के सामने आ गई मृत्यु की दूरी से वह सब कुछ देख रहा हो। उस अवस्था में भी पलंग के समीप पड़ी छोटी मेज़ के दराज़ में से उसने रिवाल्वर निकाल मेजर की ओर लक्ष किया।

रिवाल्वर की नली अपने सीने के सामने देख घबराहट में मेजर समीप पड़ी ऊँची कुर्सी की आड़ में हो गया। रिवाल्वर नोचाकर, लड़खड़ाते शब्दों में कर्नल ने कहा—"कायर, दगा-बाज़, मैं आलो को तुझसे अधिक विश्वास से प्यार करता था !... ..उसे विधवा न करूँगा। तू उसके योग्य नहीं। बाँध कर भी तू उसे रख न सकेगा।"—पथराई आँखों से कर्नल बाहर जाते मेजर की ओर देखता रहा।

× × ×

दो दिन बाद।

आलो ने झपटते हुए मेजर के कमरे में जा पूछा—"कर्नल

कौशिव का देहान्त हो गया......क्या सचमुच ?'' इस एक वाक्य से ही उसका श्वास चढ़ गया।

—"हाँ"

आलो के बेसुध शरीर को उसके कमरे में पहुँचाया गया। अनेक बेर मूर्छित होने के बाद आलो में मानसिक विकार के लक्षण दिखाई देने लगे। वह हँसने, रोने और बकने लगी। वह बकवास बहुत भयंकर था। उस बकवास को शांत करने के लिये इंजेक्शन की दवाई ले मेजर सम्पूर्ण सतर्कता और दृढ़ता से तत्पर था। सुध सम्भाल पाने पर आलो ने मर जाने का जो प्रयत्न किया, उसे मेजर ने विफल कर दिया।

मरणोन्मुख, इंजेक्शन के बल पर जीती हुई आलो सम्पूर्ण प्राणों से मरने की इच्छा करके भी मर नहीं सकती। मेजर उसे मरने नहीं दे सकता। वह उसकी अपनी चीज़ है।

......और आलो के अपने प्राण भी उसके अपने नहीं।

देशद्रोही—'संसार की किसी भी समृद्ध भाषा के श्रेष्ठ उपन्यासों के मुकाबिले रखा जा सकता है·······सोवियट का वर्णन अत्यन्त वास्तविक और रोचक है···············।"

मूल्य ३।।) —राहुल सांकृत्यायन

"चक्कर क्लब—इस प्रकाशन हिन्दी साहित्य में घटना के रूप से महत्व का होगा। उसका व्यंङ्ग जितना सबल है उतना ही रोचक ।····।"

मूल्य १।।) —डा० रामविलास शर्मा

"गान्धीवाद की शव परीक्षा—"इस पुस्तक की अवहेलना नहीं की जा सकती।" मूल्य १।।) —भदन्त आनन्द कौसल्यायन

दादा-कामरेड—"भारत भर की भाषाओं में यही एक पुस्तक जो रोमांचक उपन्यास के रूप में भारत के राजनैतिक विकास की समस्या सुलझाती है।"

मूल्य २) —पी० वाई० देशपाण्डे, प्रो० नागपुर यूनीवर्सिटी

पिंजरे की उड़ान—"इस संग्रह की कहानियाँ संसार की सर्वोत्तम कहानियों के संग्रह में रखे जाने योग्य हैं···············।"

मूल्य १।।) —नेशनल हेराल्ड

वो दुनियाँ—"हिन्दी कथा साहित्य अभी तक लेता ही रहा, इस प्रकार की रचनाओं से वह दूसरी भाषाओं को देने योग्य हो रहा है····।"

मूल्य १।।) —कविवर मैथिलीशरण गुप्त

मार्क्सवाद (कम्यूनिज़म)····पुस्तक अत्यन्त रोचक और उपयोगी है। इस प्रकार की उपयोगी पुस्तक अंगरेज़ी में कम मिलेगी····"

मूल्य २) —डा० प्राणनाथ प्रोफ़ेसर अर्थशास्त्र B. H. U.

न्याय का संघर्ष—"लेखक ने कलम की नोक से आत्मविस्मृत समाज को जगाने की चेष्टा की है····।" [हास्यरस की पुस्तक]

मूल्य १) —आचार्य नरेन्द्रदेव

ज्ञानदान—"यशपाल ने हिन्दी को जो दिया है वह न तो शरत बाबू बंगला को दे सकते थे, न प्रेमचन्द हिन्दी को·······।"

मूल्य १।।) —भगवतशरण उपाध्याय 'हंस' अक्तूबर '४२

यशपाल का तीसरा उपन्यासः— समाज के मौलिक संघर्ष और कटुवास्तविकता का विश्लेषण।